

सद्गुरुवे नमः

# आध्यात्मिक शक्ति

धर्मदास तहाँ वास हमारा। काल अकाल न पावे पारा॥  
ताकी भक्ति करे जो कोई। भव ते छूटे जन्म न होई॥

शब्द शब्द सब कोई कहे, शब्द नहीं पहचाना।  
ज्ञानी योगी पंडित औ कवि, शब्द में उरझाना॥

जहां लग बाणी मुखहिं प्रकाशा।

तहां लग काल अकाल का वासा॥

अमर लोक इक अजर द्ब। हृद अनहृद के पार खूब॥  
चढ़ि कर देखौ सुरति साग। जो कोई निरखे बड़े भाग॥

सत्य लोक जहँ पुरुष विदेही। वह साहिब करतारा॥  
आदि जोत और काल निरंजन। इनका वहां न पसारा॥

— सद्गुरु मधु परमहंस जी

साहिब



बन्दगी

सन्त आश्रम रांजड़ी, पोस्ट राया, ज़िला साम्बा ( जे. एण्ड के . )

# आध्यात्मिक शक्ति

— सतगुरु मधुपरमहंस जी

© SANT ASHRAM RANJRI (J & K)

ALL RIGHTS RESERVED

First Edition	—	Feb., 2015
Copies	—	5000

## Website Address.

[www.sahibbandgi.org](http://www.sahibbandgi.org)

[www.sahib-bandgi.org](http://www.sahib-bandgi.org)

## E-Mail Address.

[satgurusahib@sahibbandgi.org](mailto:satgurusahib@sahibbandgi.org)

प्रचार अधिकारी

— राम रतन, जम्मू

## Editor

**Sahib Bandgi Sant Ashram Ranjri**

**Post -Raya, Distt.-Samba (J & K)**

**Ph. (01923) 242695, 242602**

1.	आध्यात्मिक शक्ति	7
	— हँस आत्मा का अमरलोक	11
	— योगजीत / ज्ञानी पुरुष कबीर साहिब और कालपुरुष निरंजन	18
	— सृष्टि के रहस्य की खोज-परख	25
	— सर्गुण, निर्गुण और आध्यात्मिक भक्ति	36
	— सर्गुण भक्ति	36
	— निर्गुण भक्ति	48
	— आध्यात्मिक भक्ति	54
2.	स्वतः सहज वह शब्द है	63
3.	अनुभव सहज समाधि में	81
	— मन पर नियंत्रण की विधि	86
4.	भक्ति भाव अन्तर चले	95
	— जीवों में ज्ञान चेतना का स्तर कम ज्यादा क्यों है ?	103
	— पंच तत्त्वों से रहित आत्मशक्ति	107
	— पवन और जीव का सृजन	113
5.	शरीर से कैसे निकलें	118
6.	बिनती के शब्द	138



# दो शब्द

---

साहिब कबीर बहुत बड़े अध्यात्मिक तथा सांसारिक वैज्ञानिक थे, उन्होंने जल-तत्व का आकार गोल बताया और चाल लम्बी बताई। अग्नि-तत्व में तपिश और रोशनी है, चाल त्रिकोणी है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से बोल रहे हैं। अध्यात्म अक्ल का विषय (Subject) नहीं है। स्कूल में छात्रों को कला, वाणिज्य, भूगोल, गणित और विज्ञान के भिन्न-भिन्न विषय पढ़ाये जाते हैं। जिस विषय में छात्र स्नातक, स्नातकोत्तर और पी.एचडी. विशेषज्ञता प्राप्त करता है उसी में बुद्धि का विकास होता है। अध्यात्म बुद्धि के विकास का विषय नहीं है; आत्मनंद और विषयानंद में यही अन्तर है। आत्मशक्ति तीन-लोकों के विषयों और बुद्धि विवेक से परे ‘पराशक्ति’ है।

आध्यात्मिक ‘पराशक्ति’ और ब्रह्माण्डीय ‘ब्रह्मशक्ति’ में अन्तर है। राजऋषि विश्वामित्र थे और ब्रह्मऋषि वशिष्ठ जी। विश्वामित्र जी ने ऋषि वशिष्ठ पर कई दिव्य-शस्त्र उन्हें पराजित करने के लिए चलाये, परन्तु वशिष्ठ जी ने उनके सभी शास्त्रों को निष्क्रिय कर दिया। राजऋषि विश्वामित्र से ऋषि वशिष्ठ ने कहा मैं ब्रह्मऋषि हूँ इस कारण प्रहार करना मेरा धर्म नहीं है। इससे पता चलता है भारत ब्रह्मज्ञान और शस्त्रों के दिव्य-ज्ञान में बहुत उन्नत/विकसित था। अमरीकी राष्ट्रपति रोनाल्ड रीगन ने 30 अरब डॉलर खर्च करके आकाशीय युद्ध (Star War) के विकास का कार्यक्रम चलाया था जो असफल हो गया और उसे रोकना पड़ा। ये दिव्य-शक्तियाँ हैं तथा दिव्य-ज्ञान है।

चार वेदों के अलावा चार उपवेद हैं। धनुर्वेद शस्त्रों का विज्ञान है -

कौन-सा शस्त्र चलाना है, कब चलाना है, कैसे चलाना है यह सब उसमें बताया गया है। **आयुर्वेद** में — अश्विनी कुमार को देवताओं के डाक्टर कहा जाता था। आज बी.एच.एम.एस. छात्रों को यह चिकित्सा पढ़ाई जाती है। धन कैसे अर्जित किया जाता यह ज्ञान **अथर्ववेद** में पूरा-पूरा लिखा हुआ मौजूद है। हमारे आर्यभट्ट और वराहमिहिर कितने बड़े ज्ञानवान वैज्ञानिक थे।

मुझे बड़ी खुशी है कि हमारे वैज्ञानिक अब यह कह रहे हैं कि शरीर की मृत्यु के बाद भी कुछ शेष रहता है और आत्मिक यात्रा होती है। वैज्ञानिक तो पराशक्तियों का बेटा है, ध्यान दे - बाप नहीं कह रहा हूँ। साहिब ने पराशक्ति की बात की; भौतिक-शक्ति के दिव्य-ज्ञान से आगे 'पराशक्ति' की बात की है। उनकी वाणियाँ परा-विज्ञान से भरपूर हैं। हाँ, कल आने वाले वैज्ञानिकों का ज्ञान आज के वैज्ञानिकों से बहुत आगे होगा। मनुष्य ने अपनी भौतिक शक्तियों का बहुत शानदार परिचय दिया है।

साहिब ने चार मूल रंगों का प्रतिपादन किया; हवाला दिया — लाल, नीला, पीला और सफेद। काले रंग को वदरंग कहा। काला रंग क्यों नहीं कहा? इस त्रिस्तरीय शून्य सृष्टि के ऊपर महाशून्य आकाशों को अन्धकार कहा। वैज्ञानिक भी अब सृष्टि (शून्य) का आधार काला-तत्व (Black Matter) की बात कर रहे हैं।

साहिब कबीर ने आकर, 'आध्यात्मिक शक्तियों' की बात की है, दिव्य-शक्ति की नहीं; परा-शक्तियों की बात की है। परा-शक्ति 'सुरति' में ही ध्यान (Concentration) में है जो योग की दिव्य स्नायुमण्डल शक्ति और भौतिक अनुसंधानों की शक्तियों के दायरे में नहीं आती। जब तक ज्ञान पर 'मन' का आवरण है, परा-शक्ति कभी प्राप्त नहीं कर सकेंगे। जैसे 'ओजोन' परत धरती पर सूर्य की घातक किरणों को नहीं पहुँचने देती है; दूर पलट (Divert) देती है। अन्तरीक्ष (Space) में ओजोन परत का यह काम है। इसीतरह 'मन' का यह काम है कि आपको आत्मज्ञान

नहीं होने देता है। इस तीन-लोक सृष्टि में कोई भी सुरक्षित नहीं है। भाइयो! इस पर चिंतन करें; हमारा उद्देश्य किसी भी धर्म या किसी उपासना पद्धति का विरोध करना नहीं है।

आप वेदों को, बाइबिल को, कुरान को उठाकर देखिये, सब इस जगत को नष्ट होने की, फना होने की (कयामत), स्वर्ग और नरक, जन्नत और दोजख की बात कर रहे हैं। साहिब ने अमरलोक शब्द 'सुरति' और महाशून्य के लोकों का वर्णन किया है। वेदों के रचियता (लेखक) व्यास जी को कहा जाता है, उनसे पहले वेदों के 'मंत्र' बोले जाते थे लिखित नहीं थे। जो कुछ बोलने में, कहने में, पढ़ने-सुनने में आता है वो 'आत्मज्ञान' नहीं है। इसका मतलब है कालान्तर में जितने भी ऋषि-मुनि हुए कोई भी शुद्ध आत्म-ज्ञान प्राप्त नहीं कर सका। योग-साधना-तपस्या से स्वयं आत्मज्ञान प्राप्त नहीं होगा। एक पूर्ण गुरु (सद्गुरु) कृपा से ही आत्मज्ञान प्राप्त होता है।



अमली होकर करे ध्यान,  
गिरही होकर कथे ज्ञान।  
साधु होकर कूटे भग,  
कहे कबीर यह तीनों ठग॥

# आध्यात्मिक शक्ति

---

आध्यात्मिक शक्ति का बोध संसार के लोगों को कराने ही कलियुग में कबीर साहिब पृथ्वी पर अवतरित हुए। उनसे पहले किसी ने यह भेद नहीं बताया था कि 'अक्षय अमरलोक से निष्कासित निरञ्जन ( कालपुरुष ) युगों-युगों से सृष्टि की रचना और विनाश करने के लिए क्यों विवश है।' पूरा संसार ज्योति-स्वरूप सर्वशक्तिमान परमात्मा के रूप में निराकार (निरञ्जन) को ही मानता है। 'मन' -रूप, सृष्टि और जीवों में लुप्त होकर समाया निरञ्जन ही इस माया संसार का स्वामी है। समस्त धर्मग्रन्थ और वेद-पुराण मात्र यही ज्ञान दे रहे हैं कि एक अलख-निरञ्जन सृष्टिकर्ता है। कबीर साहिब ने 'सद्गुरु' और 'अमरलोक' की पहचान देकर समझाया, कि एक पूर्ण-गुरु ही परमपुरुष का गुप्त नाम देकर, अपनी 'सुरति' से शिष्य की सुरति (आत्मा) को जोड़कर अमरलोक ले जाने में समर्थ है। निरंजन ने हँसों के साथ आई आद्यशक्ति-कन्या को पत्नि बनने हेतु विवश कर दिया। इसलिये अमरलोक के मानसरोवर से सदा-सदा के लिए परमपुरुष द्वारा निष्कासित कर दिया गया। वही निराकार (निरञ्जन) 'मन' रूप में सृष्टिकर्ता, रचनाकर्ता और विनाशकर्ता कालपुरुष है। कालपुरुष और प्रकृति रूप आद्यशक्ति ने सर्वप्रथम सृष्टि-जीव जगत के त्रिगुण रूप त्रिदेवों को उत्पन्न कर उन्हें जीव-योनियों का कर्ता बनाया। साहिब ने इसी भेद को सद्गुरु शरण में 'आध्यात्मिक शक्ति' सुरति-योग से जानने का ज्ञान मनुष्यों को दिया। यही सुरति-योग आध्यात्म-शक्ति मनुष्य को काल-निरञ्जन के माया-जाल से मुक्त करने वाली है।

वेद मते सब जिव भरमाने। सत्यपुरुष को मर्म न जाने॥

निरंकार कस कीन्ह तमासा। सो चरित्र बूझो धर्मदासा॥

कालनिरञ्जन की स्वाँस-वायु से निर्मित वेद-ज्ञान या आकाशीय पिता से ईसामसीह के पुत्र रूप प्राप्त ज्ञान या बेचूना खुदा से [ आकाश से ] उतरा

ज्ञान एक ही निराकार की ओर इशारा कर रहे हैं। चूँकि ब्रह्मा ने स्वाँस-वायु से ही वेदों को जाना था, इसलिये वेद-ब्रह्म का ध्यान पृथ्वी आकाश की 'ज्योति' का अनुसरण ही चित्त में कराता है। स्वाँस-वायु की यह एकाग्रता अंत में मीन-योनि (मछली योनि) में ही ले जाती है, आत्मज्ञान से आत्म-मोक्ष की ओर नहीं ले जाती। ब्रह्मा ने भी ध्यान में इतना ही जाना कि वेदों ने ज्योति-स्वरूप निराकार का गुण गाया है। यही बात ब्रह्मा ने अपनी माता 'आद्यशक्ति' को बताई जबकि माता ने ब्रह्मा से यह रहस्य छिपाया था। ब्रह्मा ने ध्यान में यह भी जाना कि निरञ्जन ने ही सृष्टि को सृजित किया है 'आद्यशक्ति' (माता) ने नहीं।

धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष के ज्ञान का अंतिम लक्ष्य 'आत्मा' का निजधाम अमरलोक पाना नहीं है। 'काम' से संतानोत्पत्ति का इन्द्रिय आनन्द जीवों को जो सुख प्रदान करता है उसी में मोह और जीव-शरीर के नष्ट होने का क्रम छिपा है। शरीर को अधिक से अधिक भौतिक सुखों की कामना से 'अर्थ' अर्थात् धन और भोजन सामग्री का अर्जन भी काम-क्रोध-लोभ-मोह-अहंकार से ग्रसित करने वाला ही है। फिर प्रारम्भ के 25 वर्ष युवा-अवस्था तक धर्म के 'ज्ञान' से अंतिम दो चरणों की वृद्धावस्था के रोगी और जीर्ण शरीर से 'ध्यान' की एकाग्रता नहीं केवल कुछ प्रचलित नामों का मुँह से निकलना ही सम्भव है। इस प्रकार धर्मशास्त्रों का ज्ञान प्राप्त कुछ लोग ही अंत में जीवन कर्मों के शुभ-कर्मों के आधार पर निरञ्जन-काल के विधान अनुसार शरीर-मुक्तियाँ प्राप्त करते हैं। आत्मज्ञान के अध्यात्म का सद्गुरु 'नाम' और शुद्ध जीवन-आचरण न होने के कारण 'मोक्ष' अमरधाम प्राप्त नहीं होता। केवल स्वर्ग-नरक का आवागमन ही जीवात्मा भोगती है।

शास्त्रों के धर्म और सांसारिक विषम परिस्थितियों में प्रत्येक मनुष्य को जीवन में आत्मा के मोक्ष और अध्यात्म को प्राप्त करने का अवसर ही नहीं मिलता। जिन मनुष्यों को भिन्न-भिन्न मतों के परम्परागत रिवाजों और गुरुओं से जिस प्रकार का धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष का ज्ञान मिलता है उन्हें उसी प्रकार की मुक्तियाँ और जीव-योनियाँ मिलती रहती हैं।



शिष्य धर्मदास की जिज्ञासाओं का समाधान करते हुए कबीर साहिब ने संसार में प्रचलित धर्म-ज्ञान और **आध्यात्मिक-ज्ञान** के उदाहरण देकर समझाया है। संसार में कर्म, कर्मफल, प्रतिरोध, प्रतिशोध और बदला लेने-देने के धर्मज्ञान को अवतारों की कथाओं से समझाया गया है। अवतारों और निराकार भक्तियों में गुरु का महत्वपूर्ण स्थान मार्गदर्शक के रूप में है। इसीलिये कहते हैं—

गुरु महिमा शुकदेव जी पाई। चढ़ि विमान बैकुण्ठे जाई॥  
गुरु बिन पढ़े जो वेद पुराण। ताको नाहिं मिले भगवाना॥  
गौरी शंकर और गणेश। उन भी लीन्हा गुरु उपदेशा॥  
शिव विरंचि गुरु सेवा कीन्हा। नारद दीक्षा ध्रुव को दीन्हा॥  
काकभुसुण्ड सबहुँ गुरु कीन्हा। आगम निगम सबहि कही दीन्हा॥  
ब्रह्मा गुरु अग्नि को कीन्हा। होय यज्ञ निज आज्ञा दीन्हा॥  
वशिष्ठ मुनि गुरु किये रघुनाथा। पाये दर्शन भये सनाथा॥  
कृष्ण गये दुर्वासा सरना। पाये भक्ति जब तारन तरना॥  
नारद उपदेश धीमर से पाये। चौरासी से तुरत बचाये।  
तीर्थ व्रत और सब पूजा। गुरु बिन दाता और न दूजा॥  
नौ नाथ चौरासी सिद्धा। गुरु के चरण सेवे गोविन्दा॥  
कहैं कबीर गुरु आप अकेला। दस अवतार गुरु के चेला॥  
गुरु चरणों राखो विश्वासा। गुरुहि पुरावैं मन की आशा॥

भारतीय धर्म-संस्कारों में गुरु को सभी धर्मशास्त्रों और अवतारों ने महत्व दिया है। प्रथम गुरु-पूजा का ही विधान है। कबीर साहिब इस ओर इंगित कर रहे हैं कि त्रिलोकों में सब गुरुओं ने 'मन' की कामनाओं को पूर्ण कराने में ही अग्रणी भूमिका निभाई है। साहिब ने प्रथम बार कहा जगत में 'सद्गुरु' जो परमपुरुष में ही लीन हो, वही गुप्त 'नाम' से मोक्ष का दाता है। 'सद्गुरु' को परमात्मा से ऊँचा स्थान दिया क्योंकि वही अपनी 'सुरति' देकर शिष्य की आत्मा को परमपुरुष तक ले जाते हैं।

सतगुरु दीनदयाल हैं, जिन दिया मुक्ति को धाम।

मनसा-वाचा-कर्मणा, सुमिरो सद्गुरु नाम॥

प्रथम-बार मनुष्यों को ज्ञात हुआ कि अवतारों और ब्रह्मा-विष्णु-महेश त्रिदेवों के गुरु भी आत्मज्ञान अर्थात् 'अध्यात्म' के दाता नहीं हैं। इसलिये ब्रह्माण्डों में कहीं भी मोक्ष प्रदाता कोई नहीं है क्योंकि तीन लोकों में कालपुरुष निरञ्जन ही विधाता है। केवल 'सद्गुरु' से 'नाम' प्राप्त होने पर ही आत्मा की अनश्वर शक्ति के आध्यात्म से जीव मोक्ष पाने सद्गुरु-सुरति से जुड़ता है।

मन निरञ्जन और माया मिलकर तीन-लोकों में सबको लूट रहे हैं। माया और मन कभी नहीं मरते हैं; न ही मन की आशायें-तृष्णायें कभी मरती हैं। ....मरता तो बार-बार शरीर ही है। परमपुरुष से मिला यही श्राप तो निरञ्जन सृष्टि और शरीरों में 'मन' रूप रहकर भोग रहा है। अहंकार रूपी सूक्ष्म माया बड़े-बड़े पीर, पैगम्बर औलियाओं को खाती आई है।

पाप-पुण्य की बातों में उलझाकर 'मन' सारे संसार को ठगता रहता है, उसे कोई भी समझ नहीं पाया। कालपुरुष ने ही जीवों को संसार में चौरासी के चक्र में डाला हुआ है। इस मन ने सुर-नर-मुनि सबको ठगा है। मन ही अवतार धारण कर रक्षक बनकर सामने आता है। मन ही दाता बन जाता है, मन ही लालची बन जाता है। मन ही राजा समान हृदय वाला पालनहार बन जाता है और मन ही कंगाल फकीर बन जाता है। यदि यह मन सद्गुरु से मिल जाये तो निश्चय ही सद्गुरु में समा जावेगा। सद्गुरु ही जीवात्मा को तीन लोकों से पार ले जावेगा।

सुर नर मुनि सबको ठगै, मनहिं लिया औतार।

जो कोई याते बचै, तीन लोक से न्यार॥

बात बनाई जग ठग्यो, मन परमोधा नाहिं।

कहै कबीर मन लै गया, लख चौरासी माहिं॥

मन दाता मन लालची, मन राजा मन रंक।

जो यह मन गुरु सो मिले, तो गुरु मिलै निसंक॥

जीवात्मा को सम्बोधित करते हुए कबीर साहिब ने कहा कि हे जीवात्मा! यह 'मन' ही निरञ्जन है जो तुम्हें युगों-युगों से भ्रमित कर रहा

है। तू तो अमरलोक का 'हँसा' है लेकिन कालपुरुष के वश में आकर तू विवश है।

मन ही सरूपी देव, निरञ्जन, तोहि रहा भरमाई।  
हे हँसा तू अमरलोक का, पड़ा कालवश आई॥

### ‘हँस’ आत्मा का अमरलोक

‘सत्य’ अमरलोक में ‘परमपुरुष’ विदेह थे। एक समय अपनी ही मौज में स्वयं को प्रकट किया और बहुत हर्षित हुए। फिर एक शब्द प्रकाशा जिससे अद्भुत श्वेत-लोक उत्पन्न हुआ। उसी प्रकाशमय द्वीप की रचना में परमपुरुष समा गये। वही अद्भुत-लोक ‘अमरलोक’ कहलाता है। अमरलोक के अनन्त प्रकाश में अठ्ठासी सहस्र द्वीपों की रचना हुई। जिस स्थान पर परमपुरुष का सिंहासन अर्थात् वास हुआ वह ‘पुहुपद्वीप’ नाम से संतों ने पहचाना है। उस अद्भुत प्रकाश में परमपुरुष के समाने से वो चेतन हो गया; जैसे आत्मा के शरीर में आने पर शरीर चेतन हो जाता है। अतः वो अद्भुत प्रकाशमय लोक स्वयं ‘सत्यपुरुष’ ही हैं। अमरलोक के श्वेत-प्रकाश का एक-एक कण करोड़ों सूर्यों को भी लजा दे इतना अद्भुत आनंदमयी है। उस आनंदमयी प्रकाश लोक में फिर सत्यपुरुष की मौज हुई और उन्होंने उस प्रकाश अर्थात् अपने ही स्वरूप को छिटक (उलीच) दिया। इससे प्रकाश की असंख्य बूँदें ‘अंश’ रूप ऊपर उछलकर बिखर गईं। जिस प्रकार समुद्र में से पानी ज्वार रूप उछल कर जलकण बिखर जाते हैं और गिरकर पुनः समुद्र में ही समा जाते हैं। उसी तरह उस परमसत्य प्रकाश में अनन्त-कण बिखर गये। वे अनन्तकण भी वापस प्रकाश में आए लेकिन उसमें समा नहीं; सत्यपुरुष ने इच्छा की कि इनका अलग अस्तित्व रह जाए। उस अद्भुत आनंदमयी प्रकाश में इस प्रकार विचरण करने वाले परमपुरुष के अनन्त अंश ही ‘हँस’ आत्मा कहलाये।

कबीर साहिब अपने पात्र शिष्य धर्मदास को समझाते हुए अमरलोक का भेद बताते हैं। जब धरती और आकाश नहीं थे। जब कूर्म, शेष, बराह,

शारद, गौरी, गणेश आदि कोई नहीं था। जीवों को कष्ट देने वाला निरञ्जन भी नहीं था। तैंतीस करोड़ देवता और ब्रह्मा, विष्णु, महेश कोई नहीं था। तब वेद-पुराण-शास्त्र आदि भी नहीं थे...लेकिन वो एक परमपुरुष लोक ही था उसी में सब 'हँस' समाये थे, जैसे वट-वृक्ष के मध्य छाया रहती है।

आदि उत्पत्ति सुनहु धर्मन, कोई न जानत ताहि हो।

सबहिं भौ बिस्तार पाछे, साख देउ मैं काहि हो॥

वेद चारों नहिं जानत, सत्यपुरुष कहानियाँ।

वेद को तब मूल नाहिं, अकथ कथा बखानियाँ॥

साकार-निराकार, लोक-लोकान्तर आदि सब बाद में बने। चारों वेद भी सत्यपुरुष की कहानियाँ नहीं जानते और 'निराकार' की कथायें कहते हैं।

तब की बात सुनहु धर्मदासा। जब नहिं महि पाताल आकाशा॥

जब नहिं कूर्म बराह और शेषा। जब नाहिं शारद गोरि गणेशा॥

जब नहिं हते निरञ्जन राया। जिन जीवन कह बाँधि भुलाया॥

तैंतिस कोटि देवता नाहीं। और अनेक बतायऊँ काहीं॥

ब्रह्मा विष्णु महेश न तहिया। शास्त्र वेद पुराण न कहिया॥

जब सब रहे पुरुष के माहीं। ज्यों बट वृक्ष मध्य रह छाहीं॥

सत्यलोक के उस अद्भुत प्रकाश में सभी हँस विचरण करते हुए परमानन्द में वास कर रहे थे। परमपुरुष ने इच्छा करके दूसरा 'शब्द' उच्चारण तो उससे 'कूर्म' उत्पन्न हुआ जिसने पुरुष चरणों में 'आशा' धारण की।

दूजे शब्द जो पुरुष परकासा। निकसे कूर्म चरण गहि आसा॥

तीसरे शब्द के उच्चारण से 'ज्ञान पुत्र' — 'ज्ञान' उत्पन्न हुआ। 'ज्ञान' को परमपुरुष का ही द्वीप मिला और 'पुरुष' चरणों के सामने वास हुआ। चौथे शब्द से 'विवेक' नाम पुत्र उत्पन्न हुआ और पाँचवें शब्द में कुछ तेज आवाज से 'निरञ्जन' उत्पन्न हुआ जिसका अंग अति 'तेज' से भर गया।

चौथे शब्द भये पुनि जबही । विवेक नाम सुत उपजे तबहि ॥  
 आप पुरुष किये द्वीप निवासा । पंचम शब्द तेज परकासा ॥  
 पाँचव शब्द जब पुरुष उच्चार । काल निरञ्जन भौ औतारा ॥  
 तेज अंगते काल है आवा । ताते जीवन के संतावा ॥  
 जीवन अंश पुरुष का आहीं । आदि अंत कोउ जानत नाहीं ॥

यही निरञ्जन बाद में 70+70+64 युगों की क्रमशः तीन बार कठोर तपस्या अमरलोक में करके, शून्य में अलग त्रिलोक-सृष्टि, बीज पाने का वरदान और 'हँस' आत्मायें परमपुरुष से प्राप्त करके 'जीवात्मा' को सताने वाला 'काल निरञ्जन' कहलाया । इसी 'हँस' आत्मा और 'परमपुरुष' को जानने का ज्ञान कबीर साहिब ने संसार को दिया जिसे सत्य 'आध्यात्म' कहा जाता है ।

छटवाँ इच्छा-शब्द परमपुरुष मुख से होने पर 'सहज' पुत्र उत्पन्न हुआ जो परम-अभिलाषा रूप है । सातवें शब्द से 'संतोष' पुत्र का पुरुष द्वीप में वास हुआ । आठवें शब्द से 'सुरति' पुत्र हुआ जिसका सुभाव-द्वीप में वास हुआ ।

छठयें शब्द पुरुष मुख भाषा । प्रगटे सहज नाम अभिलाषा ॥  
 सातयें शब्द भयो संतोषा । दीन्हो द्वीप पुरुष परितोषा ॥  
 आठयें शब्द पुरुष उच्चार । सुरति सुभाष द्वीप बैठारा ॥  
 नवमें शब्द आनन्द अपारा । दशयें शब्द क्षमा अनुसारा ॥

नवें शब्द से 'आनन्द' पुत्र उत्पन्न हुआ जो आनन्द का स्रोत है । दसवें शब्द से 'क्षमा' पुत्र क्षमा का स्रोत बना ।

ग्यारहँ शब्द नाम निष्कामा । बारहँ शब्द सुत जलरंगी नामा ॥  
 तेरह शब्द अचिन्त सुत जानो । चौदहँ सुत प्रेम बखानो ॥

ग्यारहवें शब्द से 'निष्काम' पुत्र उत्पन्न हुआ और बारहवें शब्द से 'जलरंगी' पुत्र हुआ । तेरहवें शब्द से 'अचिन्त' पुत्र हुआ और चौदहवाँ शब्द पुत्र 'प्रेम' कहलाया ।

पन्द्रहँ शब्द सुत दीनदयाला । सोलहँ शब्द भै धीर्य रसाला ।।

सोलहों शब्द सुत योग संतायन । एकनाल षोड़श सुत पायन ।।

पन्द्रहवाँ शब्द पुत्र 'दीनदयाल' और सोलहवाँ शब्द पुत्र 'धैर्य' अमृत रूप हैं ।

परमपुरुष ने सोलह शब्द-पुत्रों के संतान योग को 'सुरति' की एक नाल में पिरोया है । शब्द से ही अमरलोक के द्वीपों और पुत्रों की उत्पत्ति रचना की है । अमरलोक के द्वीपों पर ही 'अंशों' को स्थान दिया और सब उस अमृत [परमपुरुष के स्वरूप] के सुखसागर का पान करने लगे । 'अंशों' की शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता; वहाँ सदा-सर्वदा आनन्द रहता है । सभी अंश परमपुरुष के प्रकाश से प्रकाशमय हैं । सत्यपुरुष के रोम-रोम का प्रकाश करोड़ों चन्द्र-सूर्यों से भी बढ़कर है ।

संशय युक्त शब्द तेज आवाज से उत्पन्न पाँचवें 'शब्दपुत्र' में अतितेज भर गया इस कारण वो उग्रस्वभाव 'निरञ्जन' उत्पन्न हुआ । इसी पाँचवें शब्द पुत्र निरञ्जन ने सर्वप्रथम 70 युगों तक एकचित्त होकर पूर्ण एकाग्रता (एक पैर पर खड़े रहना) से परमपुरुष का ध्यान किया । निरञ्जन के कठिन तप-ध्यान से हर्षित होकर परमपुरुष ने पूछा इतनी घोर सेवा-तप क्यों कर रहे हो । निरञ्जन ने शीश झुका कर विनती की मुझे स्वयं के रहने के लिए अलग स्थान देवें । परमपुरुष ने कहा हे पुत्र, तुम 'मानसरोवर' द्वीप में जाकर रहो । इससे यह प्रमाणित होता है कि परमपुरुष का ध्यान 'अमरलोक' में सर्वप्रथम निरञ्जन ने करके स्वार्थयुक्त 'वरदान' माँगा ।

'मानसरोवर' द्वीप में अलग रहकर आनन्दमय हुए निरञ्जन ने पुनः 70 युगों तक परमपुरुष का एकाग्रता से ध्यान किया । परमपुरुष को दया आई तो उन्होंने निरञ्जन के पास उसकी अभिलाषा पूछने छटवें शब्द-पुत्र 'सहज' को भेजा । निरञ्जन ने 'सहज' से अपनी अभिलाषा (इच्छा) व्यक्त कर कहा — तुम परमपुरुष से विनती कर कहो कि मुझे अमरलोक का राज्य ही दे दें या फिर एक न्यारा देश दे दें जिस पर मेरा पूरा अधिकार हो ।

इतना ठाँव न मोहि सुहाई । अब मोहि बकसि देहु ठकुराई ॥  
 मोरे चित्त भौ अनुरागा । देश देऊ मोहि करहु सुभागा ॥  
 कै मोहि देहु लोक अधिकारा । कै मोहि देहु देस यक न्यारा ॥

‘सहज’ ने परमपुरुष से दण्डवत प्रणाम कर निरञ्जन की विनती सुना दी । परमपुरुष ने आज्ञा दी तुम निरञ्जन से जाकर कहो कि ‘कूर्म’ के पेट में रचना के सब तत्व हैं वो कूर्म से विनती करके माँग ले । सहज ने निरञ्जन के पास जाकर परमपुरुष की आज्ञा सुनाई, कि कूर्म से विनती कर माथा झुकाकर सामग्री तत्व माँग ले वह तुम्हें दे देंगे ।

स्वार्थमय अभिलाषा से भरा, ‘निरञ्जन’ गहन घमण्ड के साथ, ‘आशायें’ पूर्ण करने वाले परमपुरुष के द्वितीय शब्द पुत्र ‘कूर्म’ के पास पहुँचा । ‘कूर्म’ जी अमृत समान सुखदाई, शाँत और तन को ताप से मुक्त कर शीतलता देने वाले थे । दम्भ से भरे निरञ्जन ने देखा कि कूर्म जी अत्यंत बलशाली और विशालकाया शरीर वाले हैं । निरञ्जन किसी प्रकार की विनती प्रणाम किये बिना क्रोधित होकर कूर्म जी के चारों ओर दौड़ने लगा, सोचने लगा कि कैसे उत्पत्ति की सामग्री ले लूँ । कूर्म जी के सम्मुख जाकर निरञ्जन ने नखों से उनके सिर और पेट पर आघात किया । कूर्म जी के तीन शीश काट लिये और पेट से पाँच तत्वों आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी सहित सूर्य, चन्द्र, तारे आदि के सब सूक्ष्म तत्व निकाल लिये ।

‘कूर्म’ जी ने व्यथित होकर परमपुरुष का ध्यान किया और कहा यह काल-कला रूप निरञ्जन (निरंकार) ने मुझ पर प्रहार कर मेरा पेट फाड़ दिया है । हे परमपुरुष ! मैंने आपकी आज्ञा जानकर कुछ भी नहीं किया । तब परमपुरुष ने ‘कूर्म’ से कहा — वह तुम्हारा छोटा भ्राता है और बड़ों का यह धर्म है कि वे ऐसे ओगुणी को क्षमा कर प्रीति करना सिखायें ।

आदि कूर्म रह लोक मँझारा । तिन पुनि ध्यान पुरुष अनुसार ॥  
 निरंकार कीन्हो बरियाया । काल कला धरि मोपहँ आया ॥  
 उदर बिदार कीन्ह उन मोरा । आज्ञा जानि कीन्ह नहिं थोरा ॥

पुरुष आवाज कीन्ह तेहि बारा। छोट वह आहि तुम्हारा॥

आही यही बड़न की रीति। औगुन ठाँव करहिं वह प्राति॥

निरञ्जन ने कूर्मजी से लिये गये पाँच तत्वों से 'शून्य' में तीन-लोक बनाये। स्वर्ग, पाताल, मृत्युलोक रच डाले। फिर सोचा कि तीन-लोक का विस्तार कैसे करूँ। क्योंकि बीज नहीं है इसलिये सृष्टि में जीव नहीं हैं, किस पर राज करूँ। निर्जीव सृष्टि में जीव नहीं है जैसे अमरलोक में हँस हैं। इस विचार से निरञ्जन ने पुनः मान सरोवर में ही एकाग्रता से ध्यान मग्न होकर 64 युगों तक परमपुरुष का ध्यान किया।

धर्मराय तब कीन्ह बिचारा। कैसे लो त्रयपुर विस्तारा॥

स्वर्ग मृत्यु कीन्हों पाताला। बिना बीज किमि कीजै ख्याला॥

कौन भाँति कस करब उपाई। किहि विधि रचों शरीर बनाई॥

कर सेवा माँगों पुनि सोई। तिहुँ पुर जीवित मेरो होई॥

एक पाँव तब सेवा कियऊ। चौंसठ युग लों ठाढ़े रहेऊ॥

दयानिधि सत्यपुरुष ने निरञ्जन की सेवा-ध्यान वश होकर पुनः 'सहज' को भेजा कि जाओ निरञ्जन अब क्या चाहता है, जो माँगे दे दो। उससे कहना कि छल का त्याग कर वचन के अनुरूप रचना करे। सहज ने मान सरोवर में जाकर निरञ्जन से पूछा अब किस कारण सेवा-ध्यान कर रहे हो। निरञ्जन ने विनती कर सहज से कहा मुझे खेत और बीज दोनों प्रदान करें नहीं तो मैं रचना कैसे रचूँगा। सहज ने जाकर परमपुरुष को निरञ्जन की अभिलाषा बताई। परमपुरुष ने तुरन्त इच्छा करके एक अष्टांगी कन्या उत्पन्न की जिसकी आठ भुजायें थीं। अष्टांगी कन्या को असंख्य बीज-रूप हँस देकर परमपुरुष ने आज्ञा दी — मानसरोवर में निरञ्जन के साथ रहकर 'सत्य-सृष्टि' करो। वहाँ हँस का नाम 'सोहंग' होगा इनके समान कोई दूसरा सोहंग जीव नहीं होगा। सत्यसृष्टि रचने के लिए आद्यशक्ति कन्या को हँस सौंपे अर्थात् हँसों को जीव आत्मा बनाकर शरीरों में डालने की आज्ञा नहीं दी। परमपुरुष ने मैथन रचना करने को नहीं कहा था।

निरञ्जन निरन्तर तप करता हुआ खड़ा था इसलिये परमपुरुष ने तुरन्त



‘सहज’ को बुलाकर कहा कि निरञ्जन के पास जाओ और बताओ कि जो ‘वस्तु’ तुमने चाही थी, वो भेज दी है। मूल-बीज तुम तक पहुँचा दिया है, अब परमपुरुष के बताये अनुसार शून्य में सत्य सृष्टि करो।

ततछिन पुरुष सहज टेरावा । धावत सहज पुरुष पहिं आवा ॥

जाही सहज धरम यह कहेहु । दीन्ही वस्तु जस तुम चहेहु ॥

मूल बीज तुम पहुँ पठवावा । करहु सृष्टि जस तुम मन भावा ॥

मानसरोवर जाहि रहाहु । ताते होई हैं सृष्टि उराहू ॥

आज्ञा पाकर ‘सहज’ ने निरञ्जन के पास जाकर वचन कहे तो जब उसने आद्यशक्ति जो अनन्त कला-सौन्दर्य से परिपूर्ण थी, को आते देखा तो अंग-प्रत्यंग अपार सौन्दर्य देखकर मग्न हो गया, प्रसन्नता से कामुक हो गया। निरञ्जन ने आद्यशक्ति-कन्या को पत्नि होकर सृष्टि विस्तार में सहयोग करने को कहा। आद्यशक्ति ने परमपुरुष की आज्ञानुसार निरञ्जन से कहा कि ‘सोहंग’ नाम से हँसों को ‘मानसरोवर’ द्वीप (अमरलोक) के सदृश ही शून्य-सृष्टि में रखकर राज करो। हे निरञ्जन! हम दोनों एक ही सत्यपुरुष के पुत्र-पुत्री हैं, मुझ पर बुरी दृष्टि मत डालो। जब आद्यशक्ति परिणय के लिये सहमत नहीं हुई तो निरञ्जन ने कन्या को एक हाथ में पैर और एक हाथ में शीश की तरफ से पकड़कर, निगल लिया। सब ‘हँसों’ सहित कन्या को जैसे ही निरञ्जन ने निगला तो उसने परमपुरुष को पुकारा कि निरञ्जन ने मुझे निगल लिया है। फिर निरञ्जन ने सहज को भी वहाँ से भगा दिया क्योंकि तप के कारण उसमें असीम ताकत आ गई थी।

धर्मराय कन्या कहँ ग्रासा । काल स्वभाव सुनो धर्मदासा ॥

कीनो ग्रास काल अन्याई । तब कन्या चित विस्मय लाई ॥

ततछन कन्या कीन्ह पुकारा । काल निरञ्जन कीन्ह अहारा ॥

तबहि धर्म सहज लग आई । सहज शून्य तब लीन्ह छुड़ाई ॥

आद्यशक्ति-कन्या की करूण पुकार सुनकर — परमपुरुष को ध्यान आया कि इसने पहले भी कूर्म का पेट फाड़कर पाँच-तत्व बीज निकाला था और कूर्म के तीन-शीश काट लिये थे। अब इसने आद्यशक्ति-कन्या को निगल लिया

है। परमपुरुष ने निरञ्जन को श्राप दे दिया कि एक-लाख जीवों को तू प्रतिदिन निगलेगा तो भी तेरा पेट नहीं भरेगा और सवा-लाख जीव प्रतिदिन उत्पन्न करेगा। परमपुरुष ने सत्रह चौकड़ी असंख्य युगों का राज्य पहले ही निरञ्जन को दे दिया था। इस कारण सोचा यदि मिटा दिया तो शब्द कट जायेगा और फिर सभी सोलह-पुत्रों को एक-नाल में पिरोया है; यदि एक को मिटाया तो सभी मिट जायेंगे। परमपुरुष ने इसीलिये निरञ्जन को यह भी श्राप दिया कि अब वह मेरे देश अमरलोक में नहीं आ सकेगा, मेरा दर्शन नहीं कर सकेगा। इसी श्राप के बाद से निरञ्जन का नाम कालपुरुष अथवा काल निरञ्जन हुआ। यही भेद कबीर साहिब पात्र-शिष्य धर्मदास जी को समझा रहे हैं।

पुनि कीन्ह पुरुष तिवान। तिहि छन मेटि डारों काल हो।

कठिन काल कराल जीवन। बहुत करई बिहाल हो॥

यहि मेटत सबै मिटि हैं, बचन डोल अडोलसां  
डोले बचन हमार, जो अब मेटा धरम को।

### योगजीत / ज्ञानी पुरुष कबीर साहिब और कालपुरुष निरंजन

काल निरञ्जन को अमरलोक से निष्कासन का श्राप देने के बाद परमपुरुष ने स्वयं को मथकर 'योगजीत' को प्रकट किया। योगजीत ही प्रथम ज्ञानीपुरुष (अमरलोक में कबीर साहिब का नाम) कहलाये। परमपुरुष ने योगजीत को आज्ञा दी कि कालनिरञ्जन को मानसरोवर से निकाल दो; अब वो कभी अमरलोक नहीं आ सकेगा। काल निरञ्जन के पेट में आद्यशक्ति है, उससे कहना कि मेरा ध्यान करके पेट को फाड़कर बाहर आ जाए। इससे काल निरञ्जन को कूर्म का पेट फाड़ने का भी फल मिल जायेगा। परमपुरुष की आज्ञा पाकर योगजीत मानसरोवर द्वीप आए। अब कालनिरञ्जन ने योगजीत को देखा तो क्रोध से आगबबूला होकर पूछा — कौन हो और यहाँ क्यों आए हो? योगजीत ने आद्यकन्या से ध्यान में कहा

कि इसके पेट में से परमपुरुष की 'सुरति' करके इसका पेट फाड़कर बाहर आ जाओ।

**जोगजीत कन्या को कहिया। नारि काहे उदर महँ रहिया॥**

**उदर फारि अब आवहु बाहर। पुरुष तेज सुमिरो तोहि ठाहर॥**

जोगजीत की बात सुनकर कालनिरञ्जन हृदय तक क्रोधित होकर लड़ने के लिए सामने आ गया। जोगजीत ने तब परमपुरुष का ध्यान करके उनके प्रताप तेज को हृदय में धारण किया। उसी समय परमपुरुष की आज्ञा हुई कि काल-कराल पर सुरति फेंको। जोगजीत ने वैसा ही किया और काल निरञ्जन बेहोश होकर गिर पड़ा। तब जोगजीत ने उसकी भुजा पकड़कर उसे मानसरोवर से नीचे 'शून्य' में फेंक दिया। शून्य में आकर ही आद्य कन्या उसके पेट से बाहर आ सकी। काल-निरञ्जन को देख 'आद्या' डरने लगी, सोचने लगी यहाँ कैसे आ गई, अब अपने देश नहीं जा पाऊँगी? काल निरञ्जन से त्रसित आद्यशक्ति शंका में अधिक डर गई और शीश नवाकर वहीं पास में खड़ी हो गई।

**निकसि कन्या उदरते, पुनिदेख धर्महि अतिडरी॥**

**अब नहिं देखों देस वह, कहो कौन विधि कहँवा परी॥**

**कामिनी रही संकाय, त्रसित काल डर अधिका।**

**रही सो सीस नवाय, आसपास चितवत खड़ी॥**

काल निरञ्जन ने कहा, हे कुमारी! मुझसे मत डरो, परमपुरुष ने तुम्हें मेरे काम के लिए ही रचा है, इसलिये दोनों मिलकर राज करते हैं। मैं पुरुष और तुम मेरी नारी हो। आद्यशक्ति ने कहा — यह कैसी बात बोल रहे हो, पहले नाते से तुम मेरे बड़े भाई हो क्योंकि परमपुरुष ने दोनों को बनाया है। दूसरे नाते से मैं तुम्हारी पुत्री हो गई हूँ, क्योंकि तुमने मुझे पेट में रखा और वहीं से मैं बाहर निकली हूँ। अब तुम मुझे निर्मल दृष्टि से देखो अन्यथा तुम्हें पाप लगेगा। निरञ्जन ने समझाते हुए कहा — हे भवानी! सुनो तुम मेरी सहभागिनी हो, मैं पाप-पुण्य से नहीं डरता; क्योंकि पाप-पुण्य का कर्ता मैं ही हूँ। पाप-पुण्य का हिसाब मुझसे कोई अन्य लेने वाला नहीं है। इसलिये

हे भवानी ! तुम मेरा ही कहना मानो । आगे मैं पाप-पुण्य कर्मों का जाल ही फैलाऊँगा और जो इनमें उलझा रहेगा, हमारा ही रहेगा ।

कहे निरञ्जन सुनो भवानी । यह मैं तोहि कहों सहिदानी ॥  
 पाप पुण्य डर हम नहि डरता । पाप पुण्य के हम ही करता ॥  
 पाप पुण्य हमहीं से होई । लेखा मोर न लेहै कोई ॥  
 पाप पुण्य हम करम पसारा । जो बाझे सो होय हमारा ॥  
 ताते तोहि कहों समुझाई । सिख हमार लो सीस चढ़ाई ॥  
 पुरुष दीन तोहि हम कहँ जानी । मानहु कहा हमार भवानी ॥

काल निरञ्जन की ऐसी बातें सुन आद्यशक्ति हँसते हुए एकमत होकर उसके रंग में रंग गई । मीठी वाणी बोलते हुए नारी गुण के अनुरूप अपनी निम्न बुद्धि से रति की विधि करने की ठान ली । मृदुवाणी से रति का रहस्य सुनकर काल निरञ्जन ( धर्म ) बहुत प्रसन्न हुआ और दोनों ने साथ रहने का निश्चय कर लिया ।

विहँसी कन्या सुन अस बाता । इकमति होय दोई रंगराता ॥  
 हरस वचन बोली मृदु बानी । नारी नीच बुधि रति विधि ठानी ॥  
 रहस वचन सुन धरम हरषाना । भोग करन को मन में आना ॥

आद्यशक्ति कन्या को योनिद्वार ( भग ) नहीं था । काल निरञ्जन ने अपना चरित्र दिखाया और नाखून से घात करके क्षण में भगद्वार बना दिया । इसतरह उत्पत्ति का घाट बना दिया । नख की रेख से उस भग स्थान से रक्त बह निकला । यही सबका खास आरम्भ है । आदि उत्पत्ति की यह काल निरञ्जन लीला कोई नहीं जानता । काल निरञ्जन द्वारा फिर तीन बार आद्यकन्या से रतिक्रिया की गई । कूर्म जी के पेट से पाँच-तत्व लेकर निरञ्जन ने उनके तीन-शीश खा लिये थे । इसीलिये तीन बार रतिक्रिया से ब्रह्मा, विष्णु और महेश उत्पन्न हुए । एक शीश से रजगुण ब्रह्मा जी, एक से सतगुण — विष्णु जी और एक शीश से तमगुण — शिव जी हुए । इसतरह पाँच तत्व और तीन गुणों से सृष्टि तथा जीवों की रचना काल निरञ्जन ने की है । वही सृष्टि का कालपुरुष कहलाया ।

सृष्टि और जीव रचना का यह भेद शिष्य धर्मदास को बताते हुए कबीर साहिब योगजीत ने कालपुरुष की पहचान का वर्णन किया।

गुण तत समकर देवहिं दीन्हा। आपन अंस उत्पन्न कीन्हा॥  
 बुन्द तीन कन्या भग डारा। ता संग तीनों अंस सुधारा॥  
 पाँच तत्व गुण तीनों दीन्हा। यहि विधि जग की रचना कीन्हा॥  
 प्रथम बुन्द ते ब्रह्मा भयऊ। रजगुण पंच तत्व तेहि दयऊ॥  
 दूजो बुन्द विष्णु जो भयऊ। सतगुण पंच तत्व तिन पयऊ॥  
 तीजे बुन्द रुद्र उत्पाने। तम गुण पंच तत्व तेहि साने॥  
 पंच तत्व गुण तीन खमीरा। तीनों जन को रच्यो शरीरा॥

आद्यशक्ति संग परमपुरुष के भेजे 'हँसा' के पक्के तत्व, गुण और प्रकृति इस प्रकार थे :

क्र.	तत्व	गुण	प्रकृति
1.	सत्य	विवेक : सत्य विचार का गुण	निर्बन्ध, प्रकार, थीर, निर्णय, क्षमा
2.	विचार	गुरु भक्ति साधु भाव : शील और दया का गुण	अस्ति, नास्ति ( भान ), यथार्थ, शुद्ध भाव
3.	शील	बैराग : धीरज का गुण	क्षुधा निवारण, प्रिय वचन, शांतबुद्धि, प्रत्यक्ष -पारख, सब प्रकट सुख
4.	दया	यथा तीनों गुण	अद्रोह, मित्रजीव, सम, अभय, समदृष्टि
5.	धीरज	यथा तीनों गुण	मिथ्या त्याग, सत्यग्रहण, निःसंदेह, हंता नासने और अचल

इस प्रकार अमरलोक में 'हँसा' का वास पक्के पाँच तत्व, गुणों और उच्च प्रकृतियों में था। कोई अनुमान न था पक्की देह थी। परमपुरुष के

प्रकट सरूप में हँसा अति सुन्दर होकर असीम आनंदमयी था। उसी आनन्द में हँसा अपने को भूल गया उसमें 'गफलत' पैदा हो गई। उसी गफलत में एक झाँई पड़ी जिस झाँई को सब ब्रह्म 'सच्चिदानंद' कहते हैं। उसी आनन्द में 'जीव' डूब गया तब प्रकृति पलटी और कालनिरञ्जन सृष्टि में पक्के से कच्चा रूप हो गया। अपने सरूप (स्व) की खबर नहीं रही।

कालपुरुष की सृष्टि में 84 लाख योनियों में 'जीव' बनाने से 'हँसा' के पाँच पक्के तत्व बदल कर पाँच कच्चे तत्व बन गए।

1. धीरज से 'आकाश'
2. दया से 'वायु'
3. शील से 'तेज' (अग्नि)
4. विचार से 'जल' और
5. सत्य से 'पृथ्वी' तत्व बने।

इनके तीन कच्चे गुण बने :

1. धरती और जल से 'सतोगुण'
2. अग्नि और वायु से 'रजोगुण' और
3. आकाश से 'तमोगुण'।

पाँच कच्चे तत्वों से पच्चीस प्रकृति की यह विकार युक्त 'जीव' देह बनी। इसी जीव देह में मनुष्य 'मन' नाम से कालपुरुष को ही मानता है। इसी से अहंकार हुआ 'मैं' करता हूँ जिससे 'इच्छा' बनी। इच्छा से ही 'नारी' रूप बना, जिस नारी रूप से भोग किया और वो झाँई-रूप 'ब्रह्म' सच्चिदानंद गुप्त होकर बिनस गया।

उस 'इच्छा' रूप नारी के गर्भ से तीन रूप पैदा हुए —

1. जीव जिससे 'मन' है,
2. मन से 'ज्योति' और
3. ज्योति से 'त्रिगुण'।

रजोगुण 'ब्रह्मा', सतोगुण 'विष्णु' और तमोगुण 'शिव' ये त्रिगुण बने।

इस तरह पक्के से कच्चा होने पर सम्पूर्ण सृष्टि में — ‘जीव’ खुद ही अनेक रूप रख चौरासी लाख योनियों में भ्रमता है। आनन्द के अतिरेक से ‘गफलत’ में अपनी भूमिका छोड़कर ‘हँसा’ ने बहुत दुःख पाया; तब अपने ‘मन’ [सच्चिदानंद-ब्रह्म] से कल्पना की कि हमारा ‘कर्ता’ कोई दूसरा है। फिर ‘अनुमान’ से कर्ता का निश्चय किया और उसी की प्रेम-भक्ति में बहुत वेद-शास्त्र आदि के मंत्रों (वाणियों) के आधार पर मनुष्य रूप में ‘जीव’ उस कर्ता-रूप मालिक को खोजने लगा। इसी खोज में मनुष्य ने कहा कि मालिक निर्गुण-निराकार है। जब सब वृत्ति इस खोज में थक गई तो स्वयं को मन से ‘ब्रह्म’ अनुभव करके कहा, सम्पूर्ण जगत आप ही हो रहा है। इसप्रकार से ब्रह्म से सृष्टि और सृष्टि से ‘ब्रह्म’ के चक्र-रहट के समान पड़े ‘जीव’ को कहीं निश्चित ठौर नहीं है। दोनों प्रकार से कष्ट ही पाता है।

मानवीय साधुता और सेवा से बड़े पुण्य संचय (भाग्य) का उदय (बीज) हो तो पारखी-गुरु (सद्गुरु) मिलता है जो ‘जीव’ को भ्रमों से छुड़ाये। ऐसा पूर्ण गुरु ही जीव को आवागमन से रहित कर कच्चे तत्वों को नष्ट करके मोक्ष देता है। कबीर साहिब की वाणी है —

एक जीव जो स्वतः पद, बुद्धि भ्रांति से काल।  
काल होय बहुकाल सों, रचनते भयो बिहाल॥  
बेहाली को मतो जो, देव सकल बतलाय।  
ताते परख प्रमान लहि, जीव नष्ट नहिं जाय॥  
करि अनुमान जो सुन्न भौ, सूझै कतहूँ नाहिं।  
आप आप बिसरो जबै, विज्ञान देहि कह ताहिं॥  
ज्ञान भयौ जाग्यो जबै, करि आपन अनुमान।  
प्रतिबिम्ब झाँई लखे, साक्षी रूप बखान॥  
साक्षी होय प्रकाश भौ, महाकारन तिहि नाम।  
बिम्ब मसूर प्रमान भौ, नील बरन घनश्याम॥  
बढ़ि बिम्ब अर्ध पर्व भौ, सुन्नाकार स्वरूप।

ताको कारन कहत है, महाअंधियारी कूप॥  
 कारणते आकार भौ, श्वेत अंगुष्ठ प्रमान॥  
 वेद शास्त्र सब कहत तिहि, सूक्ष्म रूप बखान॥  
 सूक्ष्म रूप से कर्म भौ, कर्महि से अस्थूल॥  
 पड़ा जीव यहि रहट में, सहै घनेरी शूल॥  
 स्थूल ते पुनि सूक्ष्म, सूक्ष्मते कारण होय॥  
 महाकरण तुरिया करी, ज्ञानदेहि कह सोय॥  
 सर्वसाक्षी सो ज्ञान है, रहित भयो विज्ञान॥  
 संतो सबै अनर्थ पद, यामें नहिं कल्याण॥

कबीर साहिब ने अपने पात्र शिष्य धनी धर्मदास जी की जिज्ञासा से भरे प्रश्नों का समाधान करते हुए 'हँसात्मा' के अमरलोक का वर्णन स्व-अनुभव से किया है। इससे यह प्रमाणित होता है कि 'परमपुरुष' का प्रकट रूप 'अमरधाम' ही 'हँसा' का निजधाम है। जीवात्मा के इसी निजघर को पाने की भक्ति का मार्ग और मोक्ष की युक्ति कबीर साहिब ने संसार को दी है। 'परमपुरुष' के प्रकट स्वरूप 'सत्यलोक' में पाँचवें शब्दपुत्र निरञ्जन की स्वार्थपूर्ण 'अभिलाषा' (इच्छा) से 70+70+64 युगों के क्रमशः 'ध्यान' से प्राप्त 'वरदान' से कालनिरञ्जन की सृष्टि का सूत्रपात हुआ। काल निरञ्जन के अनुरागमय-चित्त से यह सृष्टि है। काल निरञ्जन ने दम्भ और क्रोध से कूर्म जी के तीन-शीश और पाँच-तत्वों की रचना सामग्री बलपूर्वक छीन ली। उनसे निर्मित ये तीनों-लोक हैं। छल और कपट से आद्यशक्ति कन्या को सहभागिनी बनाकर नख-रेख से योनिद्वार निर्मित कर तीन-बार रतिक्रिया करके कूर्म के तीन शीश से ब्रह्मा-विष्णु-महेश उत्पन्न कर 'मन' रूप शून्य में और जीवों में कालपुरुष समा गया। ये ही सब कुछ अब सृष्टि और 'जीवों' में 'कारण' तथा 'अहंकार' है। इसी 'मन' को देह-पिण्डों में और सृष्टि में मनुष्य ने 'ब्रह्म' अनुमानित (कल्पना) किया है।



## सृष्टि के रहस्य की खोज परख

अब उस 'ईश्वर' [ब्रह्म] में आस्था और अनास्था रखने वालों की बहस में तीसरा पक्ष विज्ञान द्वारा सृष्टि एवं सृष्टा तत्व की खोज है।

कुछ समय पहले वैज्ञानिकों ने 'हिग्स बोसोन कण' की खोज 'लार्ज हेड्रोन कोलाइडर' में (सर्न प्रयोगशाला स्विट्जरलैण्ड) की थी। ब्रह्माण्ड के ताने-बाने में इस 'कण' की महत्वपूर्ण भूमिका है इसलिये इसको **गॉड-पार्टिकल** कहा गया। वैज्ञानिक विषयों के जानकार श्री मुकुल व्यास ने लिखा है कि भारतीय धर्म-दर्शन में 'ईश्वर' की जो अवधारण है, उसमें उसे 'सृष्टा' के साथ ही 'संहारक' भी बताया गया है। जाने माने भौतिकविद् स्टीफन हॉकिंग द्वारा 'स्टारमस' नामक पुस्तक में अनेक प्रसिद्ध खगोलविदों और रिसर्चरों के लेखों का संकलन है। इस पुस्तक के हवाले से डॉ. व्यास का कहना है कि प्रो. हॉकिंग ने इस पुस्तक की भूमिका में '**गॉड पार्टिकल**' के चिंताजनक पहलू को उजागर किया है। हॉकिंग का मानना है कि यह कण बहुत ज्यादा अस्थिर हो सकता है। अस्थिर होने पर इसकी उर्जा का स्तर 100 अरब गीगा-इलेक्ट्रॉन वोल्ट्स तक पहुँच सकता है। इस स्थिति में ब्रह्माण्ड एक भयानक विनाश की स्थिति की ओर अग्रसर हो जाएगा। इस स्थिति को '**वैक्यूम डिफे**' कहा जाता है जो एक बुलबुले के रूप में प्रकाश गति की तेजी से फैलेगा जो एक सैद्धांतिक खतरा है। क्योंकि 100 अरब गीगा इलेक्ट्रॉन वोल्ट्स उर्जा उत्पन्न करने के लिए पृथ्वी से भी बड़ी मशीन होना चाहिए। सर्न प्रयोगशाला की मशीन में उर्जा का यह स्तर प्राप्त नहीं किया जा सकता।

हॉकिंग का मानना है कि अगले एक हजार साल के अंदर मनुष्य निर्मित वायरसों, परमाणु प्रलय या ग्लोबल वॉर्मिंग से पृथ्वी तबाह हो जाएगी। पृथ्वी से मानव जाति का सफाया सम्भव है, लेकिन ऐसा होना अनिवार्य नहीं है। प्रो. हॉकिंग का विचार है कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी में तेजी से हो रही प्रगति को देखते हुए मनुष्य एक दिन मंगल और सौर मण्डल के दूसरे खगोलिय पिण्डों पर आत्मनिर्भर बस्तियाँ बसाने में

कामयाब हो जायेगा। मनुष्य सौर मण्डल से बाहर आकाश गंगा के दूसरे ठिकानों में भी अपने पैर पसार सकता है। इससे पहले हॉकिंग ने यह कहकर दुनिया को चौंका दिया था कि ब्रह्माण्ड में पारलौकिक सभ्यतायें मौजूद हैं और यदि एलियंस ने पृथ्वी पर हमला किया तो मानव जाति का सफाया हो जाएगा। उन्होंने आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (एआई) से भी इसी तरह के खतरे की आशंका जताई थी। मानव जाति के सामने एक अनिश्चित भविष्य है, क्योंकि टेक्नोलॉजी ने खुद अपने बारे में सोचना और माहौल के साथ खुद को ढालना सीख लिया है। इसलिये हॉकिंग ने यह भी माना कि यह टेक्नालॉजी युद्ध, गरीबी और बीमारियों के उन्मूलन में मनुष्यों के लिये मददगार भी साबित हो सकती है।

मनुष्यों द्वारा सूर्य, चाँद, तारे, आकाश, पृथ्वी की रचना और स्वयं को जानने एक 'सृष्टि' शक्ति होने की कल्पना से खोज प्रारम्भ की जिससे आस्था और भक्ति प्रारम्भ हुई। वेद, पुराण, उपनिषद, गीता, रामायण, बाइबिल, कुरान आदि अनेक धर्मग्रन्थों से उस अदृश्य ईश्वरीय शक्ति और अपने-अपने धर्म अवतारों को जगतकर्ता के रूप में मनुष्यों ने दृढ़ता से स्थापित कर लिया। विज्ञान भी प्रमाणिकता की कसौटी पर सृष्टि रचना और विनाश के तत्व सहित ब्रह्माण्डों में जीवों की खोज में लगा है। ईश्वरीय शक्ति, तीन स्तरीय सृष्टि रचना, आत्मा, जीव और 'हँसा' सहित सत्यलोक का वर्णन ही कबीर साहिब ने अपनी वाणी में शिष्य धर्मदास से भेद बताते हुए किया। आध्यात्मिक शक्ति का सत्य-अकह 'नाम' सद्गुरु अथवा पूर्ण संत से पाकर निरञ्जन सृष्टि से परे अनश्वर निज सत्यलोक जानने की युक्ति और भक्ति कबीर साहिब ने बताई। तीन-लोक सृष्टि के नश्वर पंच-तत्त्वों के काल निरञ्जन के माया जीव शरीरों में अनश्वर जीवात्मा को बँधनों से मुक्ति का मार्ग ही आध्यात्म है। इसी को समझाने के उपाय और मुक्ति मार्ग देने की सतत कोशिश मैं दिन-रात कर रहा हूँ। सत्य-भक्ति और आध्यात्मिक शक्ति को समझाने हेतु भिन्न-भिन्न प्रकार की योग-साधना, तप और भक्तियों के प्रकार बताना आवश्यक है। संसार में प्रचलित धर्म-आस्था और भक्तियों को जाने-समझे बिना, विज्ञान की खोज की तरह सूक्ष्म अणु

के समान ही, 'आत्म-तत्त्व' को खुद जानना मनुष्यों के लिये सम्भव नहीं है।

साकार और निराकार भक्ति-साधनाओं का लक्ष्य तथा पहुँच अथवा वेद, पुराण, उपनिषद, कुरान, तौरैत, इज्जील, बाइबिल, महापुरुषों और संत-वाणियों से सभी अपने-अपने धर्म-अवतारों के माध्यम से अंतिम ईश्वरीय वाणी उतरने का दावा संसार को अपने पक्ष में करने लड़ रहे हैं। साहिब-बन्दगी सत्संग के माध्यम द्वारा मैं कबीर साहिब की वाणियों को प्रमाण स्वरूप लेकर सद्गुरु-सत्य से आत्मज्ञान देकर आध्यात्मिक शक्ति की पहचान करवा रहा हूँ। यही आत्म-मोक्ष का मार्ग है।

चारों वेद 'ईश्वर' की बात आकाश के शून्य में समाने तक बताकर आगे नेति-नेति-नेति कहकर चुप हो जाते हैं। अर्थात् शून्य 'ब्रह्म' (काल निरञ्जन) अलखपुरुष से 'ब्रह्मा' की उत्पत्ति और पाँच तत्वों की माया-शक्ति तक का ज्ञान ही वेदों से मिल रहा है। पाँच-तत्त्व किस प्रकार उत्पन्न होते हैं और वे ही एक-दूसरे को नष्ट करते हैं। रचना एवं विनाश के इसी क्रम को कबीर साहिब ने समझाया कि —

प्रथम पृथ्वी को जल उपजावे। सो जल बहुरि पृथ्वी को खावै॥

जल की उत्पत्ति तेज से होई। भक्षे तेज पुनि जल को सोई॥

तेज को वायु रूप उपजावे। उलट वायु पुनि ताको खावे॥

वायु रूप आकाश उपजाई। फिर आकाश पुन ताको खाई॥

आकाश शून्यते उत्पत्त जानौ। बहुरि शून्य में जाये समानौ॥

वर्तमान में वैज्ञानिकों ने भी निष्कर्ष दिया है कि यह सृष्टि लगभग 13.7 अरब वर्ष पूर्व नहीं थी। जबकि कबीर साहिब ने स्पष्ट रूप से कहा कि 'कालनिरञ्जन' को 17 चौकड़ी असंख्य युगों तक राज करने का श्राप रूप वरदान मिला है। अब तक 4 (चार) चौकड़ी असंख्य युग व्यतीत हुए हैं। सृष्टि की रचना में अरबों वर्ष एक बार में लगते हैं। चार-युगों की एक चौकड़ी में 47 लाख साल होते हैं। सौ चौकड़ी के बाद 10 संख्य फिर

असंख्य गणना और अनन्त होता है तो विज्ञान कभी भी यह अनुमान कैसे कर सकता है एक-चौकड़ी असंख्य युगों में 'सृष्टि' की कितनी बार रचना होती और कितनी बार नष्ट होती है। 13.7 अरब वर्ष तो वर्तमान एक चौकड़ी असंख्य में से एक-बार का अनुमान मात्र है। वर्तमान 'पृथ्वी' ही विज्ञान के अनुसार केवल 4.5 अरब वर्ष से है। 'ईसा' भी घोषित करते हैं कि वह 'आकाशीय पिता' के इकलौते पुत्र हैं जिन्हें 'ईशवाणी' से मनुष्यों का उद्धार करने भेजा गया। आकाशीय पिता अर्थात् 'अलख निरञ्जन'।

इस्लाम धर्म में कहा गया है कि — अल्लाह को अपने पैदा किये हुए इन्सानों से प्यार था इसलिये वह बराबर हक्र की रोशनी के लिए अपने सन्देशवाहकों को भेजता रहा। अन्त में जब लोगों ने इस सन्देश को बिल्कुल मिटा के रख दिया, सारे दीप बुझा दिये, सारी दुनिया घटाटोप अँधेरे में बदल गई तो 'अल्लाह तआला' की रहमत (दया) को जोश आया। फिर अन्तिम सन्देशवाहक 'हज़रत मुहम्मद' (सल्ल.) को संसार की हिदायत के लिए रहमत बनाकर भेजा। अपने सन्देश हक्र व सत्यता को आम करने का हुक्म दिया।

अल्लाह के अंतिम सन्देशवाहक हज़रत मुहम्मद ने 'हुक्म' सुनाया कि सूरज, चाँद, सितारे, आसमान, जमीन, जंगल, पहाड़, दरिया, समुद्र सब कुछ अल्लाह के बनाए हुए हैं और सब उसके हुक्म के मुताबिक अमल कर रहे हैं। उसी ने सबको पैदा किया है और वही अकेला सबको चला रहा है; जब तक चाहेगा चलायेगा और जब चाहेगा खत्म कर देगा ये सब खुद से कुछ नहीं कर सकते क्योंकि इन सबको इन्सान का सेवक बना दिया है। इन्सान को हुक्म दिया है कि अपने पैदा करने वाले अल्लाह के आगे झुके और सिर्फ उसी की इबादत करे।

कबीर साहिब ने 'सृष्टि और जीव शरीरों' के निर्माण में पाँच-तत्वों को रचना एवं विनाश के लिए 'कालनिरञ्जन' के सहायक कहा है। काल निरञ्जन और पाँच-तत्वों सहित जीवात्मा-के-मूल 'हँसा' का मूल-स्रोत

तो 'अमरलोक' अर्थात् सत्यपुरुष से है। 'अमरलोक' जिसे कबीर साहिब ने 'शून्य' से परे अँधकार रूप '7-महाशून्य' के बाद वर्णित किया है; वहाँ इस सृष्टि की तरह कुछ भी नश्वर नहीं है। वाणी से प्रमाणित है —

सत शून्य सातहि कमल, सात सुर्त स्थान।  
 इक्कीस ब्रह्माण्ड लग, काल निरञ्जन ज्ञान॥  
 सूर्य चन्द्र तहाँ नहीं प्रकाशत, नहिं नभमण्डल तारा।  
 उदय न अस्त दिवस नहिं रजनी, बिना ज्योति उजियारा॥  
 पाँच तत्व गुण तीन तहाँ नहिं, नहिं जहाँ सृष्टि पसारा।  
 तहाँ न माया कृत प्रपंच यह, लोग कुटुम परिवारा॥  
 क्षुधा तृषा नहिं शीत उष्ण तहाँ, सुख दुख को संचारा।  
 आधि न व्याधि उपाधि न कछु तहाँ, पाप पुण्य विस्तारा॥  
 ऊँच नीच कुल की मर्यादा, आश्रम वरण विचारा।  
 धर्म अधर्म तहाँ कछु नहीं, संयम नियम अचारा॥  
 अति अभिराम धाम सर्वोपरि, शोभा अगम अपारा।  
 कहहिं कबीर सुनो भाई साधो, तीन लोक से न्यारा॥  
 पिण्ड ब्रह्माण्ड को तहाँ न लेखा, लोका लोक तहवाँ नहीं देखा॥

भिन्न-भिन्न पूजा, भक्तियों और योग साधनाओं से क्या प्राप्त होगा, कहाँ पहुँचेंगे एवं आध्यात्मिक शक्ति से कैसे, कहाँ पहुँचेंगे इसका पूर्ण ज्ञान एक 'सद्गुरु' ही देने में समर्थ है।

आत्मज्ञान को पाने जब, 'जिव' सद्गुरु शरण में आता है।  
 निराकार के खेल समझ सब, साहिब सत्यनाम को पाता है॥

'निरञ्जन काल' की ईश्वरीय शक्तियाँ मनुष्य देह में समाई हैं। पाँच-तत्त्वों के भौतिक भाव और पूजा साधनाओं में भी इन्सान के पास अनूठी सिद्धियों की शक्तियाँ हैं। इन्सान के अलावा अन्य किसी जीव ने कोई रचना नहीं की। आदमी की भौतिक ताकत असाधारण है। ऊँचे विशाल भवन, टेलीफोन, मोबाइल फोन, अन्तरिक्ष यान, टेलीविजन, कम्प्यूटर आदि अद्भुत सृजनात्मक कृत्य हैं। दूसरी ओर अणु बम, युद्धक विमान,

पनडुब्बी, मिसाइल जैसी विनाशकारी रचनायें भी मनुष्य की ही हैं। ऐसी भौतिक शक्तियों का अकूत खजाना है।

मनुष्य के पास दिव्य आन्तरिक शक्तियाँ भी हैं जिन्हें बाहरी इन्द्रियों द्वारा अनुभव नहीं किया जा सकता। इन शक्तियों से इन्सान बड़े-बड़े काम कर सकता है, ब्रह्माण्डों के रहस्यों को जान सकता है। एक समय था जब हमारे देश में शरीर की आन्तरिक शक्तियों का दिव्य विज्ञान बुलन्दियों पर था। धृतराष्ट्र को हस्तिनापुर में अर्थात् दिल्ली में बैठकर संजय ने महाभारत कुरुक्षेत्र युद्ध का हाल बताया था। यह साधारण बात नहीं है, न उनके पास कोई टॉवर थे न टेलीविजन थे न ही कोई नेटवर्क था। फिर भी बहुत सटीक सुन्दर तरीके से संजय ने हस्तिनापुर में बैठकर कुरुक्षेत्र का पूरा हाल बताया था। आप सोचें, उस समय हमारे देश में दिव्य ज्ञान और आन्तरिक विज्ञान कितनी तरक्की पर था। त्रेतायुग में ‘पुष्पक’ नामक हवाई जहाज और युद्ध में दूर तक मार करने वाले शस्त्र थे। वहीं हनुमान जैसे भक्तों के पास वायु (पवन) शक्तियाँ सिद्धियाँ और नौ निद्धियाँ थीं। इन सभी शक्तियों का भेद समझाने कबीर साहिब ने चारों-युगों में ‘सद्गुरु’ रूप अपने अवतरण का वर्णन शिष्य धर्मदास से किया। सत्ययुग में ‘सतसुकृत’ नाम से, त्रेता में ‘मुनीन्द्र’ नाम से, द्वापर में ‘करूणामयी’ और कलियुग में ‘कबीर’ नाम से मृत्युलोक की सृष्टि में आए। शिष्य धर्मदास के संश्यों का निवारण करते हुए कबीर साहिब ने कहा ‘जीवों’ को निरञ्जन के कष्टों से उद्धार हेतु ‘परमपुरुष’ ने ‘ज्ञानी’ सद्गुरु रूप हर युग में भेजा।

पुरुष आवाज उठी तिहि बारा। ज्ञानी वेगि जाहु संसारा॥  
जीवन काज अंश पठवायी। सुकृत अंश जग प्रगटे जायी॥  
दीन्ह आज्ञा तेहि को भाई। शब्द भेद वाही समझाई॥  
लावहु जीवन नाम अधारा। जीवन खेई उतारो पारा॥  
चलेहु हम तव सीस नवाई। धर्मदास अब तुम लग आई॥  
धर्मदास तुम नीरू औतारा। आमिन नीम प्रकट विचारा॥

दिव्य शक्तियों का पुंज हरेक मनुष्य देह के भीतर है कुछ चुनिंदा लोगों के पास ही नहीं। हाँ, यह शक्तियाँ आसानी से नहीं मिलती हैं। जब मनुष्य तप-साधना-योग से अन्दर की दिव्य कोशिकाओं को जगाता है तो उन दिव्य शक्तियों का आभास निरञ्जन-मन ही करा देगा। देह के विशेष स्थान की नाड़ी और कोशिकाओं के जाग्रत होने से मनुष्य 'मन' की एकाग्रता से तीनों काल [भूत-वर्तमान-भविष्य] को देख सकता है, समझ सकता है। दुनिया और सृष्टि में कहीं भी हो रही घटनाओं को देख सकता है। आदमी के भीतर की जाग्रत की गई शक्तियों से कोई ब्रह्माण्ड की यात्रा भी कर सकता है। मनुष्य इन शक्तियों को निरञ्जन-मन की सत, रज और तम त्रिगुणी भक्ति के तप-योग ध्यान से पा सकता है। जो कुछ भी तीन-लोकों में है, वही मनुष्य के शरीर में है। पिण्ड और ब्रह्माण्ड की रचना एक जैसी है दोनों पाँच तत्वों से ही बने हैं। ब्रह्माण्ड नाशवान है, यह शरीर भी नाशवान है। केवल 'आत्मा' जो 'मन' रूप लुप्त हुए काल निरञ्जन द्वारा जीव-शरीरों में बँधक है, पंच-तत्वों से परे हैं, 'अमर' है।

चौदह लोक इसी मानव-देह में हैं। पैर के तलुवों से जंघाओं तक सात पाताल लोक — [1] अतल, [2] वितल, [3] सुतल, [4] तलातल, [5] महातल, [6] रसातल, और [7] पाताल हैं। इनके ऊपर सात लोक [1] मूलाधार चक्र (गुदा स्थान), पृथ्वी-तत्व, यहाँ गणेश जी का वास है, 'सत-शब्द' से पैदा हुआ है। [2] 'स्वादिष्ठान चक्र' - ब्रह्म लोक (लिंग इन्द्रिय) यहाँ जल-तत्व है जो 'ओंकार शब्द' से पैदा हुआ है, यहाँ ब्रह्मा और सावित्री का वास है। [3] नाभि स्थान, 'विष्णु लोक' यहाँ विष्णु जी और लक्ष्मी जी का वास है। यहाँ वायु-तत्व है जो 'सोहं शब्द' से उत्पन्न हुआ। [4] 'हृदय स्थान' शिवलोक-अनहद चक्र, यहाँ 70 प्रकार की धुनें उठती हैं, अग्नि-तत्व है जो 'ज्योतिरनिरञ्जन (अलख निरञ्जन) शब्द' से उत्पन्न हुआ। [5] 'कण्ठ चक्र' यहाँ आद्यशक्ति का वास है जो 'स्वर' प्रदान करने का स्थान है। [6] 'आज्ञाचक्र' नेत्रों के ऊपर भौंहों के बीच, दो दलकमल यहाँ 'आत्मा' का वास है। [7] 'सहस्रसार

**चक्र**’ या निरञ्जन लोक, महिलाओं की माँग (माथे) भरने का प्रारम्भिक सिन्दूर स्थान है; यही पाँचवाँ **‘आकाश तत्व’** जो ररंकार-शब्द से उत्पन्न हुआ शरीर में **‘मन’** रूप समाया है।

**‘सहस्रसार’** से आगे कालपुरुष (निरञ्जन) के सात महाआकाशों [अंधकारमय शून्य] की भूल-भुलैया का प्रारम्भ होता है। इन्हें ही निरञ्जन के **‘सहस्रसार’** अर्थात् आकाश तत्व से आगे सात-लोक (1) अचिंत लोक, (2) सोहंग लोक, (3) मूल सुरति लोक, (4) अंकुर लोक, (5) इच्छा लोक, (6) वाणी लोक, और (7) सहज लोक; संतमत में कहे गये हैं। इसीलिये संतों ने कहा **‘मन’** (निरञ्जन) गहन अँधकार में रहता है।

ब्रह्माण्डों और देह पिण्ड (मनुष्य शरीर) के 14 लोकों से ऊपर काल-निरञ्जन के महाशून्य (अँधकार) 7 लोकों के पश्चात परमपुरुष या साहिब का सत्यलोक कबीर साहिब ने बताया। ज्ञानी पुरुष (सद्गुरु कबीर) ने सातों महाआकाशों की दूरी की गणना सहित **‘सत्यलोक’** की दूरी बताई। शून्य से पाँच असंख्य योजन ऊपर — अचिंत लोक, फिर तीन असंख्य योजन ऊपर सोहंग लोक, सोहंग से पाँच असंख्य योजन ऊपर मूल सुरति लोक (चेतना यहीं से आई है), फिर तीन-असंख्य योजन ऊपर अँकुर लोक, इससे पाँच-असंख्य योजन बाद इच्छा लोक, फिर तीन असंख्य योजन ऊपर वाणी लोक, इससे दो असंख्य योजन बाद सहज लोक और इसके बाद एक असंख्य योजन ऊपर **‘सत्य-अमरलोक’** का प्रारम्भ होता है।

जगत का समस्त जाल-पसारा और देह पिण्ड **‘मूल सुरति’** के कारण ही हमारे अनुभव में प्रत्यक्ष है। स्थूल-सूक्ष्म-कारण-महाकारण-ज्ञान-विज्ञान छः शरीरों की चार अवस्थाओं जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरिया में **‘सुरति’** से ही हमें बोध हो रहा है। **‘सुरति’** मन के साथ बँधी होने के कारण ही भिन्न-भिन्न शरीरों में अवस्थाओं के कारण तीनों-लोक में सत्य प्रतीत हो रहा है। इसी मिथ्या को जानने साहिब ने निःअक्षर-शब्द **‘नाम’** में सुरति लगाने का भेद बताया है।

देह धरे का यह गुण, देह सहित नहीं जाव।

सुख-सागर तबहीं मिलै, सुरति शब्द लौलाव॥



सात-सुरति 'नाल' (नामों) से देह-सृष्टि में समाई सुरति को समेटकर विहंगम रीति से मूल नाम द्वारा हँसों का निर्वाण सद्गुरु करते हैं। (1) सिंधु नाल, (2) पुहुप नाल, (3) अमीनाल, (4) सुरति नाल, (5) अग्रनाल, (6) सोहंग नाल, तथा (7) अजर नाल का विचार भेद बताकर हँसात्मा को कालनिरञ्जन के दसवें द्वार का ज्ञान सद्गुरु कराते हैं। इसके बाद ही निज सुरति में समाकर सद्गुरु निज मूल-नाम से काल-पुरुष का भ्रम मिटाते हैं।

'परमपुरुष' (सत्यलोक) में समाय 'सद्गुरु' मनुष्य-देह में प्रकट होकर ही सत्य का बोध कराते हैं। मनुष्य देह के कष्ट भोगने के साथ ही सच्चे 'संत' विरोधियों से दण्ड भी संसार में भोगते हैं। मनुष्य भी ऐसे ही किसी संत (शरीरधारी) को सुनता समझता है। संतों ने 'राम' शब्द का प्रयोग भी इसी कारण किया कि मनुष्य सुनने-समझने की ओर आगे बढ़े। लोगों ने सोच लिया-शायद दशरथ पुत्र राम के लिए संत-सद्गुरु भी बोल रहे हैं। नहीं साहिब ने इस शंका को मिटाने के लिए ही स्पष्ट किया—

जग में चारों राम हैं, तीन राम व्यवहार।

चौथा राम निज सार है, ताका करो विचार॥

एक राम दशरथ घर डोले, एक राम घट घट में बोले।

एक राम का सकल पसारा, एक राम त्रिभुवन तें न्यारा॥

साकार राम दशरथ घर डोले, निराकार घट घट में बोले।

बिन्दु राम का सकल पसारा, निरालम्बराम सबहिं ते न्यारा॥

तीन लोकों के स्वामी, जिसका जगत पसारा है, उसने तो शरीरों में जीवों को रखकर दुःखों में डाला है। मनुष्य ही क्या ऋषि, मुनि, ज्ञानी, देवता, पीर, पैगम्बर आदि कोई सुखी नहीं है, तो फिर अन्य जीवों में किसे सुख होगा।

सुर नर मुनि अरू देवता, सात द्वीप नव खण्ड।

कहे कबीर सब भोगिया, देह धरे का दण्ड॥

दुनिया में धर्म-प्रधानों-मुखियाओं ने संतों और 'सद्गुरु' को भी नहीं छोड़ा, कठोर शारीरिक यंत्रणायें दीं। यही काल-निरञ्जन का धर्मजाल है। इसीलिये संतों ने समझाया —

- पहला राम :: दशरथ का बेटा [ रामायण और रामचरित मानस आदि में जिसके जीवन का वर्णन है। ]  
 दूसरा राम :: घट-घट में बैठा अर्थात् निराकार [ सभी धर्मशास्त्रों में जिसका निर्गुण वर्णन है 'ब्रह्म' ]  
 तीसरा राम :: बिन्दु-राम अर्थात् जो सबकी उत्पत्ति का कारण है — 'ब्रह्मा'।  
 चौथा राम :: निरालम्ब राम अर्थात् 'सत्यपुरुष' [ कबीर साहिब और सच्चे संतों की वाणी में जिसका उल्लेख है। ]

निराकार (निर्गुण) भक्ति को सर्वोच्च ज्ञान-भक्ति संसार के लोगों ने मानी है। निराकार (निरञ्जन) परमात्मा है; साहिब सत्यपुरुष नहीं।

सारा संसार, निराकार को परमात्मा मानकर 'मन' के अनुमान से ईश्वर और भगवानों की भक्ति में ही 'मुक्ति' जान रहा है। साहिब 'सत्यपुरुष' तो शब्द-प्रकाशी स्वरूप है, ज्योतिस्वरूप नहीं है — आकाशीय पिता अथवा बेचूना खुदा नहीं है। परमात्मा और आत्मा शब्दों को संतों ने भ्रमांक कहा है। परमसत्ता को संतों ने साहिब 'त्रिभुवन से परे' कहा, ऐसे ही उसकी अंश चेतन-सत्ता को 'हँस' कहा है। महापुरुषों ने भी अपने नाम के साथ परमहँस लगाया। सच्चे 'संत' उसी परमसत्ता 'साहिब' में मिल उसी का 'हँस' रूप हो गये होते हैं। उनमें और साहिब में तनिक भी भेद नहीं होता, इसलिये ही परमहँस होते हैं। जब चेतन सत्ता अपने लोक पहुँचती है तो उसकी संज्ञा है — हँस। जब चेतन सत्ता, सद्गुरु कृपा से वहाँ पहुँच साहिब में समाती है और फिर उसी का रूप होकर हँसों के कल्याण हेतु वापिस आती है तो उसकी संज्ञा है — परमहँस या संत सद्गुरु। वे काल की दुनिया में रहते हैं, पर उसका कुछ भी प्रभाव उन पर नहीं पड़ता। ऐसे संत सद्गुरु जब चाहें तो शरीर से, प्राणों से और मन से बाहर निकल जाते

हैं। इसलिए वे संसार में रहते हुए भी आजाद होते हैं और दूसरों को भी निरञ्जन के दायरे से आजाद कर ले जाते हैं।

जब हँस 'मन' में मिला तो उसे 'आत्मा' कहा, जब उसमें प्राण मिले तो उसे 'जीव' कहा। जीव में मिला प्राण ही दस वायु के रूप में शरीर में है। [1] अपान, [2] उदान, [3] प्राण (हार्ट), [4] सर्वतन व्यान, [5] समान, [6] किरकिल, [7] नाग, [8] धनञ्जय, [9] देवदत्त और [10] सबल, ये दस महाप्राण हैं। इनमें ही सुरति फँसी है। जीव-शरीर में इन दस महाप्राणों की शृंखला में बाँधकर कालनिरञ्जन ने माया में उलझाया है, इसे ही 'जीवात्मा' कहा है। अपान वायु, गुदा स्थान पर है जो मल को बाहर करती है। उदान वायु कलेजे पर है यह अपान वायु को ऊपर चढ़ने से रोकती है। प्राण-वायु हृदय में वास करती है। सर्वतन व्यान वायु पूरे शरीर को शक्ति देती है। समान वायु जोड़ों को क्रियाशील रखती है। किरकिल वायु नासिका में रहकर ट्रैफिक संचालक है अर्थात् छींक द्वारा रूकी हुई वायुओं को राह देती है। नाग वायु कण्ठ को स्वस्थ रखती है। धनञ्जय वायु भुजाओं और सीने को बलिष्ठ बनाती है। देवदत्त वायु नेत्रों को स्वस्थ रखने पलकों को उठाती-गिराती है। सबल वायु आलस्य और गर्मी के प्रभाव को कम कर सब वायुओं को शुद्ध करती है। इसतरह 'जीव' शरीर रूपी पिंजड़े में आकर रोम-रोम में समा गया जो 'जीवात्मा' कहलाया। इस तरह 'हँस' को माया के बन्धन में फँसाया गया है।

निरञ्जन मन+आत्मा+प्राण+जीव साथ रहते हुए भिन्न-भिन्न शरीरों में परिवर्तित होते रहते हैं। यह निश्चित प्रक्रिया है, इसी से अधिभौतिक और अधिदैविक सृष्टि का विस्तारक्रम चलता है। धर्मशास्त्रों के गुरु इसी में परमात्मा और अध्यात्म मानते हुए मन को ज्ञान का मूल, प्राण को क्रिया का मूल और वाक् को अर्थ (Matter) का मूल कहते हैं। यही शास्त्र गुरु प्राणवान पदार्थों को 'सत्' कहते हैं और भिन्न-भिन्न प्राणों के स्वरूप (सामूहिक) को देव बताते हैं।

अमरलोक और जीव-सृष्टि के उपरोक्त मूल आधारों पर ही साकार, निराकार और आध्यात्मिक भक्ति की शक्तियों का भेद समझ में आयेगा।

यह समझाने का लगातार प्रयास मैं सत्संग द्वारा भक्तों के बीच कर रहा हूँ।

## सर्गुण, निर्गुण और आध्यात्मिक भक्ति

### सर्गुण भक्ति:

सब 'जीवों' की वृत्ति समान है। अद्भुत अनश्वर 'आत्मा' सबमें एक है। सब सुख चाहते हैं, क्योंकि आत्मा है ही आनंदमयी। सभी संसार की छोटी-छोटी इच्छाओं से भौतिक सुख पाने में लगे हैं। इच्छा और मनोकामना की पूर्ति में लगे हैं। शरीर में 14 देवताओं के रूप में 'मन' शरीर का संचालन इन्द्रियों से करवा रहा है। 5 कर्मेन्द्रियाँ + 5 ज्ञानेन्द्रियाँ + 4 अन्तःकरण। सर्गुण रूप से चौदह देवताओं (मन) की भक्तियाँ ही मनुष्य इन्द्रियों से कर रहा है। (1) 'मन' का देवता चन्द्रमा, (2) 'बुद्धि' के देवता ब्रह्मा, (3) 'चित्त' के देवता विष्णु (नारायण), (4) 'अहंकार' के देवता शंकर जी [ये चार अन्तःकरण] हैं। (5) 'नेत्र' के देवता सूर्य, (6) 'कान' के देवता दिशा, (7) वाचा (मुँह) के देवता अग्नि, (8) 'नाक' के देवता अश्वनी कुमार, (9) 'जीभ' के देवता वरुण, [ज्ञान कर्मेन्द्रियाँ] हैं। (10) 'हाथ' के देवता इन्द्र, (11) 'पैरों' के देवता उपेन्द्र, (12) 'लिंग' के देवता प्रजापति, (13) 'गुदा' के देवता यम और (14) 'त्वचा' के देवता वायु कर्मेन्द्रियाँ हैं।

सभी मनुष्य दुनिया में स्थूल आनंद के लिए भाग रहे हैं। कोई रहने के लिए कहीं जमीन पाने भटक रहा है, कोई झोंपड़े से कवेलु या टीन की छत का मकान पाना चाहता है, कोई पक्का कंक्रीट का मकान चाहता है, कोई दो-तीन मंजिला मकान बनाने की कामना कर रहा है। कोई भवन और महल बनाने की मनोकामना पूरी करने हेतु लक्ष्मी-विष्णु को भेंट चढ़ा रहा है। शिव-पार्वती और कुलदेवों से संतान प्राप्ति और धन-सम्पन्नता की भक्ति होती है। बल-शक्ति पाने 'हनुमान' जी को ईष्ट मानकर भक्ति कर रहा है तो कोई गणेश जी सरस्वती जी से विद्या-बुद्धि-ऋद्धि-सिद्धि की मनोकामना पूर्ण करने हेतु भक्ति कर रहा है।

जिन्हें 'आत्मज्ञान' पाने का संचित प्रारब्ध (कर्म संचय) नहीं है या पुण्यों का संचय नहीं है, उनके लिये 'सद्गुरु' को पाने का अवसर नहीं है। ऐसे मनुष्यों के लिए 'मूर्ति' पूजा के माध्यम से प्राथमिक भक्ति-ज्ञान जीवन सफल बनाना ठीक है। दुःखद स्थिति यह है कि मनुष्यों को मूर्तियों के सामने भीड़ में जयकारे लगाने और नाचने-गाने, ताली पीटने, कथा-कहानियाँ सुनने और भेंट प्रसाद चढ़ाने मात्र का भक्ति ज्ञान मिलता है। मूर्ति का गूढ़-रहस्य और मूर्ति-रूप देवगण कैसे प्राप्त हो, उनका लोक (स्वर्ग) किस गहन भक्ति-भावना से मिलेगा; यह ज्ञान भी सर्व-सुलभ नहीं है।

मनुष्य चार मूल-अवस्थाओं जाग्रत, स्वप्न, सुसुप्ति और तुरिया अवस्था में जीवन जीता है। प्रथम जाग्रत अवस्था में 'आत्मा' का वास आँखों में होता है। संतों का मानना है कि यह अवस्था बड़ी अज्ञानमयी है। इसमें प्राप्त होने वाली वस्तुयें भी धोखा है। इस अवस्था में आपका ध्यान (सुरति) आँखों में होने से पंच-भौतिक संसार को देखते हैं। इसमें बाह्य इन्द्रियों की कोशिकायें ही क्रियाशील रहती हैं। जैसे हमें स्वप्न में रहते हुए होने वाली सब चीजें व क्रियायें सच लगती हैं और जागने पर सब समाप्त हो जाती हैं। इसी तरह जाग्रत अवस्था में होने वाली सब क्रियायें और चीजें भी धोखा हैं, केवल अज्ञान समाया है। आदमी कई बार ऐसे मूर्खतापूर्ण विचारों से घिरा रहता है और ऐसे कार्य कर डालता है कि बाद में पछताना पड़ता है। फिर कहते हैं — यह क्या किया। अच्छा नहीं किया, ठीक नहीं किया। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न देवी-देवताओं से 'मन' की इच्छाओं की पूर्ति के लिए मंदिरों, तीर्थों, यज्ञ-हवनों में, सिद्ध स्थानों, तंत्र-मंत्र-यंत्र के जानकारों के पास आस्था-भक्ति के नाम पर जीवन में अधिकतम मनुष्य भटकते रहते हैं।

यदि स्वप्न अवस्था से जीवन में 4-5 घण्टे का सम्बंध रख रहे हैं तो जाग्रत अवस्था का 16 से 20 घण्टे जन्म से मृत्यु तक सम्बंध है। बड़ी आयु 90-100 वर्ष तक भी जीते हैं कुछ लोग। जाग्रत अवस्था में माँ-बाप, भाई-बहन, बेटा-बेटी, नाती-पोते, रिश्ते-नाते सब कुछ तो सच लग रहा है। जाग्रत

अवस्था में ‘जीव’ इस भ्रमांक संसार को ही देखते हैं। वास्तविकता यह है कि वर्तमान में जो संसार का अस्तित्व अनुभव मनुष्य करता है यह चित्त की कल्पना है। गुरु नानक देव जी ने इस अवस्था के बारे में कहा —

ज्यों सपना पेखना, जग रचना तिम जान।

इसमें कछु साँचो नहीं, नानक साँची मान॥

इस अवस्था में ‘आत्मा’ और ‘मन’ का आधा-आधा जोर चलता है। पाश्चात्य दार्शनिक ‘गेटे’ ने भी कहा — ‘ये संसार मेरा सृजन है, मैं ही अनुभव करता हूँ, तब संसार का अस्तित्व है; वरना इस संसार का कोई वजूद नहीं है।’ भाइयों, यह जगत आपका चिन्तन है, चेतन (जाग्रत) अवस्था, जिसमें हम इस भौतिक संसार को देख रहे हैं। यह भी स्वप्न ही है अर्थात् भ्रमांक अवस्था है। इसमें जो कुछ भी मन की अभिलाषायें हैं, जो कुछ प्राप्त कर रहे हैं, देख रहे हैं, सुख-दुःख ये सब भ्रमांक है। हमारे ‘मन’ की कल्पना है, मन का चिंतन है, क्योंकि मन ही बुद्धि-चित्त-अहंकार (क्रिया) रूप है। मनुष्य का मन ही इस संसार का अनुभव करवा रहा है। मन ‘आत्म-शक्ति’ को बाँधकर स्वयं उससे काम ले रहा है इस कारण मूर्ति पूजा-भक्तियाँ ‘जीव-मुक्ति’ के लिए नहीं हैं।

संत-सद्गुरु तो जीव को मोक्ष किस प्रकार मिलेगा और ‘आत्मा’ शरीर बँधनों के जन्म-मरण से कैसे मुक्त होगी, इस सत्यमार्ग के दाता हैं। सद्गुरु बताते हैं कि सर्गुण मार्ग की किस भक्ति और सद्कर्मों से ‘जीव’ को क्या गति मिलती है। तीन-लोकों के विधाता के विधान अनुसार किसी एक देवी-देवता और अवतार की आराधना भक्ति में पूर्ण समर्पण से उस ‘ईष्ट’ का स्वर्ग प्राप्त होगा। यही सर्गुण-भक्ति के मुक्ति धामों बैकुण्ठ, स्वर्ग और नरक आदि मिलने के फल है। इनसे ‘सालोक्य’ और ‘सामीप्य’ मुक्ति जीव को मिल जाती हैं। कुमार्गी को भूत-प्रेत और स्वर्ग-नर्क आदि मिलते रहते हैं। इन कर्म-फल स्थानों में सैकड़ों-हजारों सालों की अवधि पूर्ण होने पर ‘जीव’ पुनः 84 लाख योनियों के अनुसार शरीर धारण करता है। बार-बार शरीर धारण करता है। बार-बार शरीर धारण करने गर्भ में

‘जीव’ को गन्दगी में उल्टा लटकना पड़ता है। ‘जो रोगी, पीड़ित आदि दरिद्र स्थिति में जन्म लेते हैं, ऐसे मनुष्य चौरासी की यात्रा से मनुष्य-तन में आए हैं। उच्च अच्छे परिवेश में जन्म लेने वाले मनुष्य स्वर्ग का भोग करके मानव तन पाते हैं। सर्गुण भक्ति में यह सुनिश्चित है कि अच्छे या बुरे कर्मों के अनुसार फल तो मिलेंगे किन्तु मोक्ष कभी नहीं प्राप्त होगा। यह ज्ञान सगुण भक्ति मार्ग के देवी-देवता ग्रंथ और ‘गुरु’ नहीं देते।’ राम-सीता और हनुमान जी के भक्तों को यह ‘ज्ञान’ नहीं दिया जाता कि राम जी को सत्य-भक्ति या आत्मज्ञान गुरु वशिष्ठ ने दिया। सीता जी की भक्ति केवल पति-भक्ति है। हनुमान जी की भक्ति अपने ‘आराध्य’ स्वामी की भक्ति का ज्ञान है। ‘बाल्मीकि रामायण’ बाल्मीकि के स्व-अनुभव की राम-कथा गायन है। उसी प्रकार कलियुग की ‘रामचरित मानस’ गोस्वामी तुलसीदास जी के आत्मनुभव की कृति है जिसमें गुरु को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। यथा —

गुरु बिन भव निधि तरई न कोई ।

जो विरंचि शंकर सम होई ॥

ब्रह्म राम ते नाम बड़ वरदायक वरदानि ।

राम चरित सतकोटि में लिया महेश जिय जानि ॥

ये सभी ग्रंथ भक्तों को ‘सर्गुण’ भक्ति में भी पूर्ण समर्पण का ज्ञान ही कराते हैं। केवल ग्रंथों की पूजा और पठन-पाठन से ‘मोक्ष’ या आत्मज्ञान प्राप्त नहीं होगा। ‘आत्मा’ (हँस) अपने आनन्दमयी अमरस्वरूप को प्राप्त नहीं करेगी। सर्गुण मूर्ति-पूजा भक्ति में भी सतगुण भक्ति केवल वैष्णवों तक सीमित है। रजोगुण भक्ति धन-सम्पत्ति भौतिक सुख और दानपुण्य के आधार पर स्वर्ग प्राप्ति की आकांक्षा से की जाती है। अधिकतम मनुष्य सर्गुण-भक्ति में तामस अर्थात् ‘तमोगुण’ पूजा-आराधना वाले ही हैं। माँस-मदिरा सेवन महापापों में एक है। 90 प्रतिशत लोग सर्गुण की ‘तामस’ भक्तियों में ही लिप्त हैं। रजोगुणी और तमोगुणी दोनों ही भक्तियों में अधिकतम लोग माँस मंदिरा का सेवन कर रहे हैं।

अन्तःकरण ही चारों अवस्थाओं जाग्रत, स्वप्न, सुसुप्ति और तुरिया में कार्य करता है। विचार से अन्तःकरण (हृदय) में स्थान बनता है, आदत में आता है। आपकी सोच, क्रियायें, सोना, जागना सब 'मन' है 'कहत कबीर सुनो भाई साधो जगत बना है मन से।' स्थूल में शरीर और इन्द्रियाँ हैं और सूक्ष्म में 'मन' ही निराकार है। कोई नहीं सोचता 'आत्मा' मिल जाय, बाकी सभी चाह-इच्छायें हैं। मन की प्रकृति विषयों की तरफ ही जाना है जैसे जल ढलान की तरफ ही बहता है। गोस्वामी तुलसीदास जी भी कह रहे हैं — इन्दी द्वारा झरोखा नाना, तहँ देवा कर बैठे थाना। सभी इन्द्रियों के द्वार पर देवताओं का वास है। 'कार्य' इन्हीं देवताओं की प्रकृति हैं।

मनुष्य, पशु, पक्षी आदि जो जीव माँस खाने वाले हैं, हिंसक हैं, उन पर पूर्ण रूप से मन का ही नियंत्रण होता है। माँस खाने के लिए अनेक निर्दोष जीवों की हत्या करने वाले अधोगति अर्थात् निचली योनियों को प्राप्त होते हैं, नरक ही भोगते हैं। जिनकी हत्या माँस खाने की गई उनके द्वारा बदला लिया जाने, माँसाहारी मनुष्य भावी जन्म की स्वयं ही तैयारी करते हैं। माँस-मदिरा सेवन करने वालों का संग मन को शक्तिशाली बनाता है। ऐसी कुसंगति से 'आत्मभक्ति' के पथ पर जाना अत्यंत कठिन हो जाता है। कबीर साहिब ने चेताया कि जिसका गला तुम काटोगे, जिसका माँस खाओगे फिर वह भी निश्चित ही तुम्हारा गला काटने जन्म लेगा।

जो कोई काहू को दुःख देहै। बदला तासु आप शिर लेहै॥  
 सुरापान अरू माँस अहारी। नरक धाम सो अवश्य सिधारी॥  
 माँसु अहारी मानवा, प्रत्यक्ष राक्षस जान।  
 ताकी संगत मति करो, होय भक्ति में हान॥  
 कबीर काजी को बेटा मुआ, उर में सालै पीर।  
 वह साहिब सबको पिता, भला न मानै वीर।  
 कबीर काटा कूटि जे करे, यह पाखण्ड को भेष।  
 निश्चय राम न जानही, कहै कबीर संदेश॥



कहता हूँ कहि जात हों, कहा जो मान हमार ॥

जिसका गला तू काटिसो, फिर गला काटि तुम्हार ॥

गुरु नानक देव जी ने भी कहा कि कैसी भेड़, कैसी बकरी और कैसी अपनी संतान सबका एक ही रक्त माँस है। सबकी देह में समान पीड़ा होती है। सम्पूर्ण जगत की आत्मा साहिब कबीर की प्रिय हैं।

क्या बकरी क्या भेड़ है, क्या आपन जाया।

रक्तमासु सब एक है तुके किन फरमाया ॥

नानक घट परचै भई सबही घट पीरा।

सकल जगत के आत्मा महबूब कबीरा ॥

अनेक कुकर्मों और जीवों को बँधन में कर सताने के कारण परमपुरुष ने कालनिरञ्जन की 'सुरति-नाल' तोड़ दी। श्राप दिया कि वह कभी परमपुरुष का ध्यान नहीं कर पाएगा और अमरलोक नहीं आ पाएगा। परमपुरुष ने कालनिरञ्जन को मिटाने का भी सोचा, पर 17 चौकड़ी असंख्य युग राज करने का वरदान-शब्द कट जाता इस कारण मिटाया नहीं। यह श्राप दिया कि हर दिन एक लाख जीवों को निगलेगा तो भी पेट नहीं भरेगा। सवा-लाख 'जीव' हर दिन उत्पन्न करेगा। इसी कारण 'मन' रूप काल-निरञ्जन दिन-रात कभी शान्त नहीं है, चलायमान रहकर कामनाओं से भरकर जीवों को नचा रहा है। चैन नहीं लेता, सदा असंतुष्ट रहता है। असंख्य युगों से निरञ्जन और आद्यशक्ति के शिंकजे में 'जीव' फँसा है। साहिब ने बड़े प्यारे शब्दों में कहा —

स्वर्ग पाताल मृत्यु मण्डल रचि, तीन लोक विस्तारा ॥

हरिहर ब्रह्मा को प्रगटायो, तिन्हें दियो शिर भारा ॥

ठाँव ठाँव तीरथ रचि राख्यो, ठगवे को संसारा ॥

चौरासी बीच जीव फँसवा, कबहुँ न होय उबारा ॥

जारि बारि भस्मी करि डारे, फिरि देवे अवतारा ॥

आवागमन रहे उरझावे, बोरे भव की धारा ॥

सद्गुरु शब्द बिना चीन्हें, कै से उतरे पारा।।

‘ठाँव-ठाँव तीरथ रचि राख्यो, ठगवे को संसारा।’ विचार करें, क्या कह रहे हैं। दुनिया को ठगने के लिए तीरथ आदि स्थान निरञ्जन काल ने बनाये जिससे जीव इन्हीं में उलझा रहे। कोई सत्य की तरफ न चल पाये। भाइयों! यह गम्भीर गूढ़ विषय है, इस पर गहराई से विचार करें। फिर, ‘माया फाँस फँसाय जीव सब, आप बने करतारा। सद्गुरु शरण जो अमरलोक है, ताको मूँदो द्वारा।।’ सबको माया में फाँस दिया और परमात्मा बनकर बैठ गया। हँसात्मा का मूल घर जो अमरलोक है, उसका द्वार ही बंद कर दिया। कभी सद्गुरु शरण में नहीं, पहुँचने देता है, यह ‘मन’। ‘गण गंधर्व ऋषि मुनि अरू देवा, सभी लाग निरञ्जन सेवा।’ कृत्रिम कला और बाहरी चीजों की ही मनुष्य पूजा-भक्ति कर रहा है। आत्मा अपना स्वरूप नहीं समझ पा रही है। पाँच-तत्त्वों में आत्मा नहीं है; जबकि आपमें है ही ‘आत्मा’। पंच-तत्त्व नाशवान हैं, मन-बुद्धि-चित्त-अहँकार से परे है ‘आत्मा’। सर्गुण-भक्ति में सभी पंच-भौतिक तत्त्वों से आनन्द ले रहे हैं। जगत की कोई चीज ‘आत्मा’ की है ही नहीं। ‘आत्मा’ तो है ही आनंदमयी।

योगी, जंगम, सेवड़ा, सन्यासी, दरवेश और कर्मकाण्डी-ब्राह्मण ये छः दर्शन सर्गुण और निराकार (निर्गुण) तक की उपासना-भक्ति ही दुनिया के लोगों को बता रहे हैं। भक्ति और धर्म का व्यवसाय करने भी बहुत लोग आ गए हैं। इस व्यवसाय में लागत है नहीं, आय ही आय है। लाखों धर्म-संस्थाएँ रजिस्टर्ड करवा कर और लाखों बिना रजिस्टर्ड कराये अपने परिवार तथा सगे-सम्बन्धियों को सौंप रहे हैं।

हिन्दुओं का धर्म आधार वेद हैं। ऐसे ही अन्य धर्मों के आधार ग्रंथ हैं। भिन्न-भिन्न पंथ-सम्प्रदाय-मतमतांतर सबमें हैं। ‘सामवेद’ आत्मा को ही परमात्मा बताता है। ‘अथर्ववेद’ कर्मों को स्थापित करता है — कर्म और कर्मफल का ही विधान बताता है। ‘ऋग्वेद’ केवल निराकार परमात्मा कहता है। ‘बौद्ध मत’ में परमात्मा शब्द नहीं है, अष्टांग-योग और आत्म-ज्ञान है। मनुष्य वर्तमान में परमात्मा की खोज में कहाँ तक पहुँचा? सभी

पक्षी, पशु, कीट अपने वर्ग में इकट्ठे रहते हैं वे अपने वर्ण में लड़ाई नहीं कर रहे हैं। केवल इंसान झगड़ालू और क्रूर है, एक-दूसरे को मारने को तैयार हैं। इन्सान अपनी-अपनी धार्मिक मान्यताओं के कारण ही क्रूर हुआ है। धर्म-जाति के कारण इंसान बंटा हुआ है। ईश्वर है या नहीं इस विषय पर झगड़ा नहीं है। केवल मेरा-तेरा भगवान के नाम पर इंसान हिंसक हुआ है।

**‘एकै जात सकल संसारी, एकै राह सकल उत्पानी।’** बुद्धिजीवी और नासमझ सभी वर्ण-जातियों में हैं। बुद्धिजीवी इंसान यह क्यों नहीं समझ रहा है? शरीर के अंग सबके समान हैं, पाँच तत्व और उनकी 25 प्रकृतियाँ सब में हैं। हम सब मूलतः एक हैं। फिर महाअज्ञान क्या है? केवल भिन्न-भिन्न प्रकार के भगवानों, पूजा स्थलों के धर्म के कारण इन्सान, इन्सान को मिटाता है। परमाणु उर्जा की तकनीक 55 देशों के पास है किन्तु मानव जाति को खतरा केवल धर्म से है, अणुबम से नहीं। इंसान ने कुण्ठित मानसिकताओं के कारण अपने स्वार्थ के लिए धर्म का दुरूपयोग किया।

सब लोग शरीर में रहते-रहते बस शरीर ही मान रहे हैं, व्यक्तित्व ही देख रहे हैं। कालपुरुष की शून्य सृष्टि में आकाशीय पिता, बेचूना खुदा और भगवान या ईश्वर माना जा रहा है। हर कोई कह रहा है हम अपनी मर्जी से काम कर रहे हैं। नहीं; कोई भी आजाद नहीं है — सब **‘मन’** की मर्जी से काम कर रहे हैं। मन की ही इच्छायें हैं। **‘मन ही निरञ्जन सबै नचाई।’** जैसे जल ठोस-तरल-वाष्प रूप है, इसी तरह मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार ही अन्तःकरण है। **‘मन’** की वृत्तियाँ ही काम-क्रोध-लोभ-मोह-अहंकार हैं। सर्गुण-भक्ति में **‘मन’** के ही ये सब रूप और गुण सक्रिय रहते हैं। साहिब कहते हैं — **‘काम क्रोध लोभ मोह अहंकारा, साधु सोय जो इनको मारा।’**

कबीर साहिब ने सप्रमाण बताया कि सभी कालपुरुष की भक्ति कर रहे हैं। आखिर दुनिया के लोग गलत भक्ति में क्यों लगे हैं? कुछ कारण तो होगा। हम अपने आस-पास देखें तो एक बात जाहिर है कि कोई वृक्षों की, कोई नदियों की, कोई पत्थरों की भक्ति में सर्गुण परमात्मा मान रहा है।

इसमें आदमी का दोष नहीं है। कुछ वर्ग, जाति के समूहों ने अपने हितों के लिए इंसानों को गलत भक्ति में लगाया है। यह आत्मा तो परमपुरुष का अंश है, उसी की है; लेकिन भक्ति सभी इस सृष्टि की, नाशवान तत्वों की, कालपुरुष की कर रहे हैं। **‘जो रक्षक तहँ चीन्हत नाहीं, जो भक्षक तहँ ध्यान लगाहीं।’**

यदि किसी पहाड़ पर कोई मूर्ति गाड़कर प्रचारित कर देता है कि फलां पहाड़ पर त्रेतायुग की या द्वापर की मूर्ति निकल आई है तो दुनिया के लोग वहाँ दौड़ पड़ते हैं। उसी स्थान पर भगवान जानकर पूजा-भक्ति करने लगते हैं। फिर सब कहने लगते हैं वहाँ माथाटेक, मन्त्र माँगकर प्रार्थना करने से सभी मनोकामनायें पूरी हो जाती हैं। लोग समाधियाँ बनाकर, चबूतरा बनाकर कहते हैं कि फलां बाबा का सिद्ध स्थान है, वहीं कोई पुजारी बनकर रहने भी लगता है। ऐसे हजारों स्थान हैं, फिर भी हरएक दुःख-संकट में है। बस, इस बहाने पाखण्डी लोग, पुजारी बनकर, लालच देकर, भ्रम फैलाकर खूब धन इकट्ठा करते हैं। पूरे समाज को स्वार्थियों ने इन्हीं चीजों में भटका रखा है। **‘खरे सयाने सबही भटके, तीन लोक में सबही अटके।’**

मैं जितना पाखण्ड का विरोध डंके की चोट पर कर रहा हूँ, उतना अन्य कोई नहीं कर रहा। मेरे ‘नामी’ भक्त भी बहुत कठिन परिस्थितियों में संघर्ष करके सत्य-मार्ग पर चल रहे हैं। मेरा विरोध किसी देवी-देवता से नहीं है, किसी जाति-वर्ग से नहीं है। मैं केवल यही कह रहा हूँ कि देवी-देवताओं की इस ब्रह्माण्ड में अपनी-अपनी सीमायें हैं। मेरा लक्ष्य पाखण्डियों से सावधान करके यह बताना है कि ‘आत्मा’ क्यों बँधन में है और अध्यात्म क्या है। अपने अन्दर की ‘आत्मा’ की शक्ति को पहचानें। साहिब वाणी है —

**बिन जाने जो नर भक्ति करई। सो नहीं भव सागर से तरई ॥**

सृष्टि रचना के पश्चात काल निरञ्जन के अवतारों, पुत्रों, पैगम्बरों, देवों

के साकार-रूपों की कथाओं से ही 'आत्मज्ञान' के विपरीत 'मन-माया' की भक्तियों में उलझाया गया है।

कबीर साहिब ने शिष्य धर्मदास को हरि-चरित्र की यह जानकारी देकर बहुत जिज्ञासा उत्पन्न कर दी और प्रश्नों का उत्तर देते हुए आगे बताया।

सत्युग में स्वर्ग, पाताल और पृथ्वी का बहुशक्ति-महादानी राजा 'बलि' था। जो भी बलि से माँगा जाता था वह देता था। लेने वाला बार-बार हर्षित होकर आता था। एक बार पाताल के राजा बलि ने अपने मंत्री 'शुक्र' की सलाह से स्वर्ग का राज पाने अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया। श्रीविष्णु 'वामन रूप' बनाकर बलि की यज्ञशाला में पाताल गए और बलि से कहा — मैं तुम्हारी दान की महिमा सुन कर आया हूँ, मेरे तीन पग में जो भी आ जाए वही दान में लूँगा। महादानी राजा बलि ने इसे अत्यन्त तुच्छ माँग समझकर वामन रूप श्रीहरि विष्णु से रत्न-हीरा-माणिक माँगने को कहा। श्रीविष्णु ने केवल तीन-पग दान माँगकर तीन-लोक तीन-कदम में नापकर बचन हर लिया। धर्म-बचन के धनी 'बलि' ने सब कुछ दान में हार दिया तब श्रीविष्णु ने अपना हरिरूप प्रकट किया। इस तरह कालनिरञ्जन की सृष्टि का पुनः छलयुक्त सत्युग आरम्भ हुआ। इसी सृष्टि में कर्मफल, प्रतिरोध, प्रतिशोध और अवतारों द्वारा बदला लेने-देने का ज्योति-निरञ्जन मायाजाल है। श्री हरिविष्णु ने जो मुक्ति फल और कर्म दिये हैं उन्हें ही मोक्ष धर्म मानने के भ्रम से, कबीर साहिब ने मनुष्यों को निकाला है। जीवात्मा केवल मनुष्य योनि में इस भ्रम से सद्गुरु ज्ञान पाकर ही निकल सकती है।

सनक-सनंदन ऋषियों के बैकुण्ठ द्वार पर पहुँचने पर वहाँ पहरा दे रहे जय और विजय ने उन्हें रोक दिया। इसे अपना अपमान जानकर ऋषियों ने जय-विजय द्वारपालों को श्राप दे दिया कि दैत्य होकर मृत्यु मण्डल में जन्म लें। दोनों भाइयों जय-विजय ने श्रीविष्णु को जाकर यह घटना बताई तो श्री विष्णु ने ऋषियों को बुलाया। बिना सोचे-समझे अत्याधिक दण्ड देने का दोषी मानकर बदले में जय-विजय के दैत्य-जन्म में उनका पुत्र होने का

श्राप सनक-सनंदन को दिया। यही बदला देकर सनक-सनंदन ऋषि मुक्त होंगे। वे ही जय-विजय पृथ्वी लोक में हिरण्यकुश और हिरनाक्ष दैत्य राजा हुए जिन्होंने शिव जी की भक्ति करके देव-यक्ष से अधिक गुणी एवं बलशाली होने का वरदान पाया। हिरण्यकुश के पुत्र प्रहलाद को नारद ने गुरु बनकर 'अलख निरञ्जन' नाम से श्रीविष्णु को ही आराध्य बताया। पुत्र प्रहलाद से रूष्ट होकर दण्डित करने वाले पिता हिरण्यकुश को श्रीविष्णु ने नरसिंह रूप धर अपनी जंघाओं पर रखकर नखों से मारा। अंत में प्रहलाद ने श्रीविष्णु की कृपा से स्वर्ग पाया 'इन्द्र' बना। वैकुण्ठ स्वर्ग और मृत्युलोक में आवागमन का यही कालपुरुष द्वारा जीवों का विधान है।

स्वर्ग के राजा इन्द्र ने एक बार सिद्ध, ऋषि, ज्ञानी और गण-गन्धर्वों को न्यौता देकर इच्छा-भोज का यज्ञ किया और सबका सत्कार किया। स्वर्ग का घण्टा नहीं बजने पर नारद जी ने विचार कर कारण बताया कि ऋषि जमदाग्नि ने 'इच्छा' को वश में कर लिया है। ऋषि जमदाग्नि अपना 'ध्यान' छोड़ें या रति करें तो घण्टा बजेगा। इन्हीं ऋषि जमदाग्नि का ध्यान भंग कर राजा कश्यप की कन्या से विवाह कराया गया। इसीसे भृगुकुल बना। त्रेता में भृगुकुल के परशुराम-रूप श्रीविष्णु को श्रीराम ने राजा जनक द्वारा सीता-स्वयंवर के धनुष-यज्ञ में पहचाना।

राजा दशरथ ने शिकार करते समय श्रवण कुमार को मारा जिस कारण श्रवणकुमार के अंधे माता-पिता ने दशरथ को श्राप दिया कि तुम्हारा अंत भी पुत्र वियोग में होगा। इसी श्राप के बदले राजा दशरथ के घर में राम जन्में और राम के वनवास से दशरथ की मृत्यु हुई।

एक बार राजा दक्ष ने समस्त देवों, ऋषियों और राजाओं को यज्ञ में आमंत्रित किया किन्तु शिवजी को आमंत्रित नहीं किया। अपने पिता का यज्ञ देखने की लालसा 'सती' को हुई तो वे स्वयं ही शिव को राजी करके यज्ञ स्थल ले गईं। राजा दक्ष ने पुत्री सती को शिव के साथ विवाह करना अपने कुल का अपमान बताया और शिवजी को यज्ञ में प्रवेश करने से रोक दिया। इस पर 'सती' ने क्रुद्ध होकर यज्ञ-कुण्ड में कूदकर जान दे दी।

यज्ञ-सभा में हाहाकार मच गया और बहुत विध्वंस हुआ। शिवजी ने क्रोधित होकर 'सती' का अधजला शव उठाया और कन्धे पर रखकर प्रचण्ड रूप धारण कर सृष्टि को नष्ट करने निकल पड़े। माता 'सती' के शव के अंश भाग मृत्यु-लोक में 52 स्थानों पर गिरे जो 52-शक्तिपीठ कहलाये। इसके पश्चात 'सती' ने राजा हिमाचल के घर जन्म लिया और पुनः 'पार्वती' नामकरण हुआ। श्रीविष्णु ने अब सोचा कि 'सती' के बाद समाधि में लीन हुए 'शिव' की समाधि-भंग करने का उपाय केवल कामाग्नि जगाना है। इसी कामाग्नि को जगाने 'कामदेव' और 'रति' को तैयार कर शिवजी के पास भेजा गया। श्रीविष्णु ने पुनः 'पार्वती' को शिव से विवाह करने की योजना बनाई।

ब्रह्मज्ञानी (ब्रह्मापुत्र) नारद और ऋषि पाराशर भी कामाग्नि (काम) से नहीं बच सके। ऋषि पाराशर, केवट कन्या द्वारा नाव चलाकर नदी पार कराते समय 'मच्छोदरी' के सौन्दर्य पर मोहित हुए और रतिक्रिया को विवश किया। राजा हिमाचल के यहाँ 'पार्वती' के रूप-सौन्दर्य पर 'नारदजी' का मन डोल गया और विष्णु जी के पास जाकर सुन्दर रूप माँगा। श्रीविष्णु ने 'नारद' को बचाने बन्दर का मुख दे दिया। जब नारद को कुँवारी पार्वती ने दर्पण दिखाया तो नारद 'क्रोध' में विष्णु जी के पास गए। तब श्रीविष्णु ने नारद को दक्ष के यज्ञ-हवन में सती के प्रवेश कर जलने की याद दिलाई और पार्वती का पुनर्जन्म बताया तो नारद को अपने अपराध का बोध हुआ। नारद ने श्रीविष्णु के पाँव पकड़ कर क्षमा माँगी और पुनः नर रूप देने की प्रार्थना की।

कर्मफल, प्रतिरोध, प्रतिशोध और बदला लेने-देने के काल-निरञ्जन त्रिलोकों की पुराण कथाओं से कबीर साहिब ने शिष्य धर्मदास की जिज्ञासाओं का समाधान करते हुए 'सत्य' का ज्ञान दिया। बताया कि सर्गुण-भक्तियों के भ्रमांक ज्ञान से आत्मा का ज्ञान अर्थात् अध्यात्म शक्ति का बोध नहीं होगा। सत्यलोक-परमपुरुष में समाने अर्थात् आत्मा को निजधाम पाने सद्गुरु से 'नाम' सुरति प्राप्त करना ही एक उपाय है।

## निर्गुण भक्ति

सभी लोग दुनिया में स्थूल आनंद के लिए भाग रहे हैं। अपनी इन्द्रियों पर नियंत्रण करने वाला 'साध' कहलाता है। 'इन्द्री साधे साध कहाये।' 'पलट वजूद में, अजब विश्राम है।' सबने एक कल्पना बनाई है कि आत्मा एक प्रकाश या चमकता गोला है। नहीं-नहीं भाई! आत्मा तो, ध्यान है, 'सुरति में रच्यो संसारा।' आत्मा को भ्रमित करने वाला 'मन' है। आत्मा का बैरी मन है। 'जीव के संग मन काल रहाई अज्ञानी नर जानत नहीं।' हमें मन का विश्लेषण करना होगा, जानना होगा। किसकी ताकत ज्यादा है, मन की या आत्मा की? पूरा ब्रह्माण्ड ही मन है। महापुरुषों द्वारा योगी और योगेश्वरों द्वारा सहारा मिल रहा है मन को जानने का। दसों अवतार भी 'मन' (निरञ्जन) के हैं। 'है प्रतिपाल सबहिं को साहिब, कहो कौन को मारा।' सद्गुरु और संतों ने काल-निरञ्जन के अवतारों और सत्यपुरुष में यही अंतर स्पष्ट करते हुए तुलनात्मक विवरण से 'सत्य' भक्ति का मार्ग बताया है। साहिब की वाणी दर्पण का काम करती रहेगी दुनिया के लिए।

नाम सत्य गुरु सत्य आप सत्य जो होय।

तीन सत्य जब एक हों विष से अमृत होय॥

'आत्मा' स्वयं शक्ति का स्रोत है, आत्मा को कहीं से शक्ति लेनी नहीं है। 'आत्मा' भ्रमवश भूल में है, शरीरों के बँधन में स्वयं का विस्मरण हो गया है। आत्मज्ञान के बाद संसार का भ्रम नष्ट हो जाता है। जीवात्मा देखा-देखी में उलझी है। 'नाम' जगाने की क्रिया है और 'सद्गुरु' आत्मा को जगाता है, उसको अपना स्मरण करा देता है। योग अभ्यास, योग साधना पाँच-शब्द और पाँच मुद्राओं से 'आत्मा' जाग्रत नहीं होगी। स्वयं के निजलोक (मोक्षधाम) को आत्मा नहीं जानेगी; 'मन' के ही विभिन्न स्वरूपों और लोकों (ब्रह्माण्डों) की, प्राप्ति योग साधन से होगी।

'मैं हूँ' इसमें आत्मा का अंश है। 'दिल' में बात विचार द्वारा जाती है। हमारे अन्तःकरण में विचार है तो 'मन और आत्मा' है। भवन में पानी से ही सीमेंट-ईट-लोहा की शक्ति है। पानी समाप्त होने पर, सूख जाने से



भवन खण्डहर हो जायेगा। इसी तरह शरीर और 'मन' की नींव 'आत्मा' है, दिल का दरवाजा 'विचार' है। जो भी अच्छा-बुरा होता है उसका असर दिल पर आता है। दिल और दिमाग एक-दूसरे के पूरक हैं, यही आत्मा का ठिकाना है जिसे अन्तःकरण कहते हैं। 'हृदय' अच्छा है इसीसे शरीर चलायमान है। किन्तु 'दिमाग' शातिर है। इच्छायें मन से आती हैं, दिमाग (ब्रेन) वजीर है। ब्रेन तो मन का एक उपक्रम है, इसी से मन की इच्छाओं पर अंकुश लगाना होगा।

वैदिक धर्म या हिन्दु धर्म में मतैक्य है कि — ईश्वर है, आत्मा अमर है, और संस्कारों का प्रारब्ध है। लक्ष्य हैं — मोक्ष या मुक्ति और परमार्थ। सत्य और अहिंसा इसके सिद्धांत हैं। इसकी महानता के पीछे कोई कारण है कि यह दुनिया का महान धर्म है। तत्व ही तत्व के घातक हैं, नाशक हैं। परमात्मा और आत्मा अविनाशी है। विफलता इस कारण है कि परमात्मा को खोजने का हमारा (हिन्दुओं का) तरीका अटपटा हो गया है। सब इन्द्रियों की सीमित शक्ति पर निर्भर हो गए हैं। इसीलिये कबीर साहिब कह रहे हैं—

**वा घर की कोई सुधि न बताये जहवाँ से हँसा आयो।**

'यहाँ भोग तहाँ योग विनाशा।' निर्गुण भक्ति गृहस्थों के लिये नहीं है, केवल ब्रह्मचारी कर सकते हैं। योग अभ्यास और योग क्रिया में चक्रशोधन और चक्रभेदन करना होता है जो गृहस्थ नहीं कर सकता। आइए हम देखते हैं, निर्गुण-भक्ति में पाँच शब्द और पाँच मुद्राओं से कहाँ तक पहुँचा जा सकता है। किसकी कितनी पहुँच है। लक्ष्य क्या है?

**'जो जाकी उपासना कीन्हा ताको कहूँ ठिकाना।'**

(1) **चाचरी मुद्रा** : आँखों के मध्य तीसरे तिल पर 'ज्योतिरिञ्जन' शब्द से ध्यान एकाग्र करने से अग्नि-तत्व उत्पन्न होता है। योगी हृदय से ऊपर उठकर ज्योति जाग्रत करता है इसके 'तेज' से भर जाता है। थोड़ा भी ध्यान विचलित होने पर नाभि-स्थान में पहुँच कर वायु-तत्व में विलीन हो जाता है। लगातार 'ज्योति-रिञ्जन' नाम का जाप करने से आँखों के मध्य का स्नायु मण्डल जाग्रत हो जाता है। ऐसा साधक त्रिकाल में जो हो चुका

है वो भी देख सकता है। क्या होने वाला है इसका भी ज्ञान हो सकता है। साधारण मनुष्य और सन्यासी ऐसे योगी से आँख नहीं मिला सकते।

**ज्योति निरञ्जन चाचरी मुद्रा सो है नैनन माहीं।**

**तेहिको जाना गोरख जोगी महातेज है ताहीं॥**

चाचरी मुद्रा में ज्योति-निरञ्जन शब्द का जाप करके गुरु गोरखनाथ जी महान योगी होकर योगेश्वर कहलाये। साहिब कबीर ने कहा कि इस मुद्रा से ध्यान लगाने से शक्तियाँ तो मिल जायेंगी पर ठौर-ठिकाना नहीं मिलेगा। ‘ज्योति निरञ्जन’ शब्द से नेत्रों के मध्य समाया ‘तेज’ मन का ही स्वरूप है, आत्मा नहीं। इङ्गला से साँस लेकर अर्थात् नासिका के दांयी तरफ से साँस ऊपर खींचकर बांयी तरफ पिङ्गला से छोड़ी। इसतरह नाभि से वायु को शरीर के सब स्थानों से खींचकर इङ्गला-पिङ्गला में समकर सुषुम्ना खोलने से तीसरे तिल में ध्यान की एकाग्रता से तेज (अग्नि) उत्पन्न होगा। इससे ‘प्रज्ञा’ अवस्था बन जाती है। जैसे हम सपना देखते हैं तो नींद में जाना पड़ता है। इसी तरह तीसरे तिल में ध्यान रोकने से ‘प्रज्ञा’ अवस्था बन जाती है तो साधक प्रकाश देखता है जिसे वो परमात्मा मानता है। वास्तव में नेत्रों के मध्य कोशिका जाग्रत होती हैं, ‘आत्मा’ की शक्ति और स्वरूप का ज्ञान नहीं होता। योगी केवल चमत्कारी ही बन सकेगा आत्मज्ञान नहीं होगा। यह ‘पपील मार्ग’ है।

**( 2 ) भूचरी मुद्रा** — भूचरी मुद्रा में तीसरे तिल से ऊपर ‘आज्ञाचक्र’ त्रिकुटी पर ध्यान एकाग्र कर ‘ॐ’ ओंकार शब्द का जाप करने से जल-तत्व उत्पन्न होता है। इसमें योगी दिव्य-शांति का अनुभव करता है। हजारों सूर्य और चन्द्रमाओं के ब्रह्माण्डों का भ्रमण जैसा आनन्द मिलता है। इस मुद्रा के अनुयायी इसी कारण ‘ओउम्’ को सृष्टि का आदि और अन्त मानकर ‘ॐ’ को ही परमात्मा मानते हैं। केवल सृष्टि का ज्ञान ही ‘ओंकार’ में सीमित है। जल-तत्व के कारण ‘ब्रह्म लोक’ का ज्ञान ही इसकी अंतिम सीमा है। अर्थात् ‘मन’ रूप निरञ्जन का ही ज्ञान होगा। आत्मा का और अनश्वर सत्य का ज्ञान नहीं होगा। योगेश्वर व्यासदेव इस मुद्रा में ध्यानस्थ होकर ब्रह्मज्ञानी कहलाये। साहिब ने कहा —

ओम् ओंकार भूचरी मुद्रा त्रिकुटी है स्थाना।

व्यास देव ताको पहचाना, चन्द्र सूर्य सो जाना॥

‘ॐ’ (ओम्) ओंकार शब्द के जाप से मस्तक के त्रिकुटी-स्थान का स्नायु-मण्डल जागता है। इङ्गला-पिङ्गला को लय करके दसों वायुओं को शरीर से खींचकर सुषुम्ना में जाने पर साधक कई ब्रह्माण्डों के लोक-लोकान्तर देखता है। यह ‘मीन’ मार्ग है। ‘बंकनाल’ में 70 किस्म की संगीतमय धुनें सुनाई पड़ती हैं। अगर साधक ने ‘शंख’ ध्वनि पर अपना ध्यान एकाग्र कर दिया तो ‘सहस्र दल’ कमल में जाएगा। रेलगाड़ी के इंजन की सिटी जैसी धुन पर ध्यान एकाग्र किया तो स्वर्गादि लोकों को देख लेगा। जिस धुन पर ध्यान की एकाग्रता रुकी उसी लोक में पहुँच जायेगा। इसीतरह शरीर के ध्यान स्थानों में सुप्त कोशिकायें हैं। कोई ज्योति-निरञ्जन शब्द से खुलती हैं तो कोई ‘ओम्’ शब्द से खुलती हैं। वास्तव में आदमी के शरीर में बड़ी शक्तियाँ हैं वो अपनी शक्तियों को जानता नहीं। लेकिन ‘ॐ’ ओम् शब्द के ध्यान से भी आत्मा की शक्ति और स्वरूप का ज्ञान नहीं होगा। साहिब यही तो समझा रहे हैं —

गुप्त होय के प्रगट होवे, गोकुल मथुरा काशी।

पवन चढ़ावे सिद्ध कहावे, होय सूर्य लोक का वासी॥

...तबहुँ नहीं गुरु के बच्चा अबहीं कच्चा रे कच्चा॥

( 3 ) अगोचरी मुद्रा — अगोचरी मुद्रा से योगी हृदय स्थान पर ‘सोहंग-शब्द’ से ध्यान एकाग्र करता है। इससे वायु-तत्त्व उत्पन्न होकर साधक को कुछ दिखाई नहीं देता। केवल शब्दों की ‘अनहद’ मीठी धुन सुनता हुआ ध्यान को रोकता है। योगी शब्द-धुन के आनंद में मग्न होकर भँवरगुफा में पहुँच कर कुछ सिद्धियाँ प्राप्त कर लेता है। ‘अनहद’ शब्द साधक को बहुत बल प्रदान करते हैं और वह इन्हें ही परमात्मा मान लेता है। साहिब ने समझाया—

सोहं शब्द अगोचरि मुद्रा, भँवरगुफा अस्थाना।

शुकदेव ताको पहचाना, सुनी अनहद की ताना॥

अ-गो-च-र अर्थात् जो इन्द्रियों से न दिखे। सोहं शब्द अगोचरी मुद्रा में सबसे उच्च स्थान शुकदेव जी का हुआ जो योगेश्वर कहलाये। अनहद-

धुन सुनने वाला फिर संसार से दूर ही रहना चाहता है। बाहर का सब संसार अप्रिय लगने लगता है। अनहद शब्द-धुन को परमात्मा में एकाकार मानने की भूल इस साधना में 'मन' करवाता है। निरञ्जन- 'मन' ही इन धुनों का ईश्वर है। साधक 'सोहं' शब्द जाप से भँवर-गुफा में ध्यान एकाग्र करता है। जिस शब्द की बात साहिब कबीर ने की वो अन्दर में होने वाला अनहद शब्द नहीं है। अनहद-शब्द धुन भी महाशून्य में जाकर समाप्त हो जाती है, यह 'आत्मा' नहीं है, साधक इससे आगे नहीं जा सकता। जैसे पानी में जाकर हम बोलना चाहें तो हमारे शब्द वहाँ नहीं हो पाते हैं। इसी तरह अनहद शब्द धुन महाशून्य से आगे नहीं जा पाती हैं।

'योग' साधना में जिस शब्द धुन पर ध्यान की एकाग्रता होगी उसी लोक में योगी पहुँच जायेगा। जिस तरह फोन पर आपने जो नम्बर डायल किया वहीं घण्टी बजेगी। अब अटेचियों और बैंक लॉकर्स आदि में नम्बर वाले ताले भी लगते हैं। 'शब्द' वाले ताले भी आ रहे हैं, कोई शब्द से ताला खुल जायेगा। इसी तरह शरीर के ध्यान केन्द्रों में सुप्त-कोशिकायें हैं — कोई 'ज्योति निरञ्जन' शब्द से, कोई 'ओम' अथवा ओंकार शब्द से तो कोई 'सोहं' शब्द से खुलती हैं। इसीलिये साहिब ने कहा —

जाप मरे अजपा मरे, अनहद भी मर जाये।

सुरति समानी शब्द में ताको काल न खाये॥

( 4 ) उनमुनि मुद्रा — चौथी उनमुनि मुद्रा में योगी 'सहस्रसार चक्र' पर सत्-शब्द का ध्यान करता है। इससे 'पृथ्वी तत्त्व' उत्पन्न होकर एक अद्भुत प्रकाश दिखाई देता है। माताओं के माँग में सिन्दूर लगाने वाले प्रारम्भ स्थान को 'सहस्रसार चक्र' या निरञ्जन-लोक कहा जाता है। 'सत्' शब्द से 'सहस्रसार चक्र' पर ध्यान एकाग्र कर योगी शरीर से ऊपर उठकर विदेह हो जाता है। सत्-शब्द के इस अद्भुत प्रकाश को राजा जनक ने पाकर स्वयं को विदेह जाना। यह सत्यलोक (अमरधाम) का 'परमपुरुष स्वरूप' प्रकाश नहीं अपितु निरञ्जन-लोक है। इसी निरञ्जन-लोक के अधीन ही तो सम्पूर्ण सृष्टि है, यही कारण है कि विदेह होकर भी योगी शरीर से जुड़ा रहता है। केवल तन-मन-धन का लोभ समाप्त होकर

‘मेरा’ होने का भाव समाप्त हो जाता है। लोक कल्याण के सिवा साधक अपना कुछ नहीं मानता। साहिब ने इस सम्बंध में कहा —

**सत् शब्द सो उनमुनि मुद्रा, सोई आकाश सनेही।**

**तामे झिलमिल ज्योति दिखावे, जाना जनक विदेही॥**

इङ्गला-पिङ्गला को सम करके राजा जनक उनमुनि-मुद्रा के सत्-शब्द का जाप करते थे। योगी शरीर से दसों-वायुओं को इकट्ठा करके सुषुम्ना से निकलकर कपाट में खड़ा हो जाता है। शरीर से प्राण-वायु की शक्ति ऊपर उद्धर्तमुखी होकर योगी विदेह हो जाता है। यह भी ‘मन’ का ही एक रूप है, ‘आत्मा’ मन के बन्धनों से मुक्त नहीं होती। ‘उनमुनि मुद्रा’ में मन ही आत्म शक्ति का उपयोग कर साथ रहता है।

उनमुनि-मुद्रा में सत्-शब्द ध्यान साधना से चूँकि ‘पृथ्वी तत्त्व’ उत्पन्न होता है। इसलिये स्वाभाविक रूप से प्राणवायु का खिंचाव अंत समय तक नीचे नाभि की ओर ही रहेगा; दसवें द्वार तरफ ऊपर जाने के लिए प्रयास नहीं होगा। अतः ग्यारहवें द्वार और सत्यलोक का ज्ञान-अनुभव नहीं होगा। केवल निरञ्जन-लोक तक के ‘आकाश’ का ही प्रकाश दिखाई देगा। इससे करोड़ों-वर्षों की ‘सायुज्य’ स्वर्ग मुक्ति प्राप्त होगी। पुनः संसार में राजा या ऋषि का शरीर सुख ही मिलेगा। मोक्ष प्राप्त नहीं होगा। सद्गुरु और ‘नाम’ अंत समय साथ न होने से निरञ्जन-लोक से आगे अमरलोक जाना सम्भव नहीं है।

( 5 ) खेचरी मुद्रा — पाँचवी योग मुद्रा ‘खेचरी’ में ‘रंकार’ शब्द का ध्यान शीश की चोटी वाले स्थान पर किया जाता है। इससे ‘आकाश’ तत्त्व उत्पन्न होकर दसवें द्वार अर्थात् सुषुम्ना से निकलकर महायोगी साधना करते हैं। सुषुम्ना-नाड़ी से ही निरञ्जन ‘मन’ रूप में शरीर में समाया है। योगी इसी को ‘परमात्मा’ मानकर ढूँढ़ते हैं। इस मुद्रा में ध्यान एकाग्र कर योगी द्वारा सुषुम्ना में प्राणवायु समेट कर अलौकिक सूक्ष्म शरीर प्राप्त कर लेता है। इस सूक्ष्म शरीर से अनन्त ब्रह्माण्डों में योगी भ्रमण कर अलौकिक आनंद आकाश के अंतिम छोर में पाता है। इसकी तुलना में अन्य सभी योग-मुद्राओं के योगियों का आनन्द कम ही हैं।

ररंकार खेचरी मुद्रा दसवाँ द्वार ठिकाना।

ब्रह्मा विष्णु महेश्वर देवा, ररंकार पहचाना॥

निरञ्जन स्वयं मन-रूप शरीर और सृष्टि में व्याप्त हुआ है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश त्रिदेवों को कालनिरञ्जन ने ही आद्यशक्ति को सौंपकर उन्हें रचियता, पालनकर्ता और संहारकर्ता का गुरुत्व भार सौंपा है। आद्यशक्ति स्वयं त्रिदेवों सहित समस्त जीवों में माया-रूप है। जिस प्रकार भोग-क्रिया में विषय-इन्द्री का आनंद सबसे बढ़कर होता है; इसी प्रकार योग-ध्यान में दसवें द्वार अर्थात् सुषुम्ना खुलने का आनन्द सबसे बढ़कर है। शिवजी जो प्रथम योगेश्वर कहलाये सृष्टि के अन्त तक शरीर धारण करने आद्यशक्ति से पाए वरदान के स्वामी हैं। इसी कारण पाँचों वृत्तियों सहित तमोगुण प्रधान होकर अपने भक्तों के ओघड़दानी भोलेनाथ हैं। ब्रह्मा, विष्णु जी सहित शिवजी ने 'सत्ययुग' में ज्ञानी साहिब (कबीर) को सद्गुरु तो माना किन्तु सत्य 'नाम' नहीं लिया। दसम द्वार से निकलने के आनन्द और सृष्टि के आनंद के वशीभूत इन्होंने साहिब से 'सत्यनाम' नहीं लिया और सदा वरदानी तथा प्रलयंकारी बने हुए हैं।

निराकार (निर्गुण) भक्ति के सभी योगियों का मार्ग समान रूप से असाध्य कठिनाई वाला है। प्रत्येक योग मुद्रा और शब्द-जाप के लिए चक्र-शोधन और चक्र-भेदन क्रिया भी सभी मनुष्यों द्वारा सम्भव नहीं है।

### आध्यात्मिक भक्ति

एक 'संत' सद्गुरु के आनन्द में और ऋषि-योगियों के आनंद में जमीन-आसमान का अंतर है। योगी, सिद्ध, ऋषि, सन्यासी (ब्रह्मचारी) स्वर्ग-वैकुण्ठ धामों के लाखों-करोड़ों वर्षों की अवधि के आनंद सदा अखण्डनीय मोक्षधाम के लिए है किसी अवधि विशेष के लिए नहीं। योगियों का सारा आनंद शरीर की सूक्ष्म कोशिकाओं के जागरण से होता है जिनमें सुषुम्ना नाड़ी का आनन्द सबसे बढ़कर है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि शरीर-छूटने के साथ ही योगी-ऋषि-सिद्ध-ब्रह्मचारी-सन्यासी सभी का ब्रह्माण्डीय भ्रमण का आनंद भी समाप्त हो जाता है। केवल सूक्ष्म

रूप 'आत्मा' परलोकों का फल-भोगती है, स्वर्गादि मिलते हैं। निराकार-मन (निरञ्जन) की भक्ति कर्म बन्धनों से मुक्ति नहीं है, कर्म ही है, और कर्मफल अनिवार्य है। कर्म की कमाई है जिसका उच्च से उच्चतम सावधि फल निर्धारित है।

सद्गुरु की 'आध्यात्मिक भक्ति' में कोशिकाओं और सुषुम्ना नाड़ी को जाग्रत करने की कठिनतम साधना-कमाई नहीं करना पड़ती है। सद्गुरु से 'नाम' दीक्षा और सद्गुरु में विश्वास व समर्पण से 11वें द्वार के पार होकर तीन-लोकों से परे 'सत्य' मोक्षधाम में 'हँस' आत्मा समा जाती है। सद्गुरु स्वयं भवसागर से पारकर ले जाते हैं। इसीलिये संत-सम्राट कबीर साहिब ने कहा — 'जिस दिन तुम्हारा योग-साधना का सूक्ष्म शरीर नष्ट हो जाएगा, उसदिन तुम्हारी सुषुम्ना नाड़ी भी समाप्त हो जायेगी। तब तुम अपने ध्यान को किस स्थान पर रोकोगे।' वाणी है —

सिद्ध साधु त्रिदेव आदि लै, पाँच शब्द में अटके।

मुद्रा साध रहे घट भीतर, फिर औँधे मुँह लटके॥

पाँच शब्द और पाँचों मुद्रा, सोई निश्चय कर माना।

उसके आगे पूरण पुरुष पुरातन तिनकी खबर न जाना॥

योग की पाँच-मुद्राओं में मनुष्य जीवन की चार-अवस्थाओं व तुरियातीत स्थिति में कालपुरुष (मन) छः प्रकार के शरीर में क्रियाशील रहता है — (1) स्थूल शरीर, (2) सूक्ष्म शरीर, (3) कारण शरीर, (4) महाकारण शरीर, (5) ज्ञानदेही और (6) विज्ञान देही। साहिब इसी भेद को समझा रहे हैं कि मन-रूप तीन लोकों के स्वामी निरञ्जन की कठिन भक्तियों में त्याग और वरण दोनों ही 'कर्म' हैं; स्वयं ही तपस्या करना है। इसके विपरीत 'सत्यभक्ति' के दाता 'सद्गुरु' त्रिगुणों से रहित रहकर स्वयं मोक्षधाम ले जाते हैं। सत्य-भक्ति या सद्गुरु-भक्त में सत्यवचन, मादक नशों से दूर रहना, शाकाहारी होना, चरित्र से उत्तम, ईमान की कमाई से जीवन-यापन करना, किसी प्रकार की चोरी-संग्रह से मुक्त रहना और किसी प्रकार का जुआ नहीं खेलना जैसे 'गुण' स्वयं आ जाते हैं।

जीवन-मरण के चक्र से मुक्ति का एकमात्र मार्ग सद्गुरु से 'नाम' प्राप्त होने पर 'आध्यात्मिक शक्ति' है। मन-रूप निरञ्जन की सुरति से चार प्रकार की मुक्ति प्राप्त होती हैं — 'सालोक्य मुक्ति' वाम मार्ग से, 'सामीप्य मुक्ति' निर्वाण मार्ग से, 'सारूप्य मुक्ति' अघोर मार्ग से और 'सायुज्य मुक्ति' अलख पुरुष भक्ति से (निरञ्जन में समाने)। सभी धर्म मत-मतांतरों के सार को परख लो, यही पाओगे कि चारों मुक्तियों के जीवन-मरण क्रम से कालनिरञ्जन ने जीवों को वश में कर रखा है।

सद्गुरु से प्राप्त 'अकह' गुप्त 'नाम' की 'आध्यात्मिक शक्ति' से लोभ-मोह रहित होकर काम-क्रोध से स्वतः उबर जाओगे। दुःख-सुख के सभी संशय नष्ट होकर पाप-पुण्य के कर्म नहीं रहेंगे। चित के सभी संग्रह नष्ट होकर भौतिक सम्पन्नता और धन मिथ्या लगने लगेगा। इसी जीवन में रहते 'आत्मा' अर्थात् 'नाम' के स्वरूप को जान लेंगे। ऐसे सद्गुरु 'शब्द' के गुरुमुखी जीव ही इस सृष्टि रूपी भवसागर से पार होते हैं। इसी को पाँचवी-मुक्ति या 'मोक्ष' कहा है, संतों ने।

चार मुक्ति के वे हैं राजा। पंचड़ मुक्ति भिन्न उपराजा ॥  
 प्रथम मुक्ति सालोक बताई। मारग वाम ताहि कर आई ॥  
 दूजी मुक्ति समीप कहावा। निर्वाण मार्ग हो ताकहँ पावा ॥  
 तीसरि मुक्ति स्वरूप बखानी। अघोर मार्ग ही ताकर जानी ॥  
 चौथी मुक्ति कहिये सायोजा। सभैग मार्ग कलमा पढ़ रोझा ॥  
 चारों मुक्ति निरञ्जन लीन्हा। तिनके बसहि जीव सब कीन्हौ ॥  
 अब सुन पाँचई मुक्ति विचारा। धर्मदास परखो मत सारा ॥  
 जीवन मुक्ति दरस तब लहये। मृतक दसा होय नामहि गहिये ॥  
 सत्य वचन मुख सो उच्चरई। नाम सार हृदमें महँ धरई ॥  
 नियम धर्म षटकर्म अचारा। त्रिगुण फंद सों रहै निन्यारा ॥  
 सुरति निरति नाम सों राखै। सद्गुरु वचन सत्यकर भाखै ॥  
 लोभ मोह सों रहे न्यारा। करम क्रोधते आप उवारा ॥  
 दुख सुख की कछु संशय नाही। पाप पुण्य नाही चित माहीं ॥



अरथ द्रव्य मिथ्याकर मानै। जीवन जनम नाम पहिचानै॥

सो जिव उतरहि भवजल पारा। जो यह चाल चलै निर्धारा॥

सुरति-निरति को 'नाम' में समाये रखकर 'सद्गुरु' वचनों को ही गुरुमुख बनकर मानें। परमपुरुष विदेह रूप कमल में वास करते हैं। सुरति भी विदेह-शब्द रूप पुरुष में है। अमरलोक में सम्पूर्ण द्वीप पुरुष ने सुरति से ही रचे हैं। निरञ्जन को भी सुरति-शब्द से ही उत्पन्न किया है। परमपुरुष शब्द के साथ 'सुरति' विदेह मुक्ति की डोरी रूप है। इसी कारण 'सुरति' शब्द में ही समाई है। निरञ्जन भी सुरति को एकाग्र करके 'मन' रूप समाया है। शब्द को सुरति से बाँध कर ही भवसागर से निकालने सद्गुरु जीवों को पुकारते हैं। विदेह निःअक्षर शब्द में जिसका वास है, वही 'सद्गुरु' है जो सुरति-स्वरूपी होकर शिष्य में प्रवेश करते हैं। यह 'आध्यात्मिक शक्ति' अन्यत्र किसी धर्म-गुरु में नहीं होती। इसीलिये मैं विनम्रतापूर्वक साहिब-बन्दगी सत्संग में सत्य-भक्तों से कहता हूँ — 'जो वस्तु मेरे पास है, ब्रह्माण्ड में कहीं नहीं है।'

संसार के मायाजाल में भी 'सद्गुरु के नेत्रों' में सुरति की अग्र-झलक दिखेगी। ऐसे पूर्ण गुरु के विदेह 'शब्द' की गहन गहराई में उतरकर ही शब्द का प्रकाश उतरेगा। विदेह 'नाम' (निःअक्षर नाम) में ध्यान मग्न रहने से सुरति 'शब्द' में समाने पर शरीर मृतक समान हो जाता है। इस प्रकार जीते जी इस 'आध्यात्मिक शक्ति' से आत्मस्वरूप पाकर शीतलता और तपन का आभास नहीं रहता। जन्म-मरण की शंका समाप्त हो जाती है। चलते-फिरते सद्गुरु शब्द के सुमिरण से शरीर के अचेत होने का ध्यान रखने की जरूरत नहीं रहती। स्वयं ही चैतन्यता रहती है। सुरति विदेह-शब्द के साथ जुड़ जाने से सांसारिक मोह के पिता-माता-बहन-भाई-पुत्र-पुत्री-बँधु-बाँधव की ममता का बँधन नहीं रहता। मकान-सम्पत्ति और आभूषण का लोभ छूट जाता है। भूख-प्यास को मिटाने के लिए स्वाद की इच्छा नहीं रहती। ऊँच-नीच का विचार समाप्त हो जाता है। धर्म-अधर्म से ऊपर उठकर इनसे न्यारे हो जाते हैं। दुःख-सुख सब समान हो जाता है,

‘आध्यात्मिक शक्ति’ के ‘सद्गुरु’ भक्त का। ऐसी अवस्था होने पर विदेह रूप को जान जायेगा। इस काया-पिण्ड (शरीर) को सीप के समान जानकर शब्द-रूप स्वाति को अन्दर आने दो। जब सीप को स्वाति बूँद मिल जायेगी तो मुक्ता ही उत्पन्न होंगे। अर्थात् सीप रूप देह में स्वाति रूप विदेह-शब्द (नाम) समाने पर शरीर का संचालन ‘मन’ से नहीं होता। मन से ‘सुरति’ निकल कर सत्य-शब्द (नाम) के संग हो जायेगी तो विकारों का प्रवेश नहीं हो सकेगा। साहिब की वाणी से यह स्पष्ट होता है —

सद्गुरु वचन सुनो धर्मदासा। अगम भेद तोहि कहों प्रकाशा॥  
 विदेह मुक्ति तुम पूछिव आई। सो सब कथा कहों समुझाई॥  
 पुरुष विदेह कमल मों रहेऊ। सुरति विदेह शब्द जौं ठयऊँ॥  
 लोकदीप सब सुरति हिं कीन्हाँ। तेहि पाछे मन उत्पन्न कीन्हाँ॥  
 विदेह मुक्ति की डोरी चीन्हाँ। शब्द सुरति के हाथहि दीन्हाँ॥  
 मनहिं समेटि सुरति पहचानी। सुरति जाय तब शब्द समानी॥  
 शब्द सुरति कर बाँधों भेला। भवसागर से दीन्हो हेलाल॥  
 शब्द विदेह गुरु कर बासा। सुरति स्वरूपी शिष्य निवासा॥  
 सुरति शब्द में लीन्हो बासा। सुरति स्वरूपी शिष्य निवासा॥  
 मायाजाल कृत्रिम सब लेखो। अग्र झलक नैनन में देखो॥  
 कूप झाँकि हो वचन विदेही। अग्नि जार उठावै सेही॥  
 अग्र शब्द तबही लिख पावै। मृतक दिशा हो सुरति समावै॥  
 शीतल तपत स्वाद नहिं जानै। जन्म मरण शंका नहिं आने॥  
 चलत फिरत वचन अस भाखा। चेत अचेत बोध नहिं राखा॥  
 पुत्री पिता बँधु नहिं जानै। माता बहन नाहिं पहचानै॥  
 ग्रीहि अभूषण धरै न अंगा। तृषा क्षुधा नहिं स्वाद उमंगा॥  
 ऊँच नीच की नाहिं बिचारी। धर्म अधर्म दोउसे न्यारी॥  
 दुख सुख सब एकहि करि जानी। विदेह अंग ऐसे पहिचानी॥

काया सीप सम जानिये, स्वाति शब्द पटआन।  
 परखनेह संपुट बँधों, मुक्ताहल उतपान॥

मन से 'सुरति' को मुक्त रखने पूर्ण-सद्गुरु का आश्रय चाहिए। सद्गुरु की सुरति रखते-रखते एक दिन शिष्य सद्गुरुमय हो जाता है। शरीर स्थूल है, सृष्टि स्थूल है जो दिखाई देती है, किन्तु इनके भीतर जो सूक्ष्म तत्व है वह दिखाई नहीं देता। शरीर में आसक्ति होने से वह तत्व विषय-भोगों की ओर प्रवृत्त होता है।

संतत्व केवल समर्पण की बात कहता है। संतत्व की मान्यता है कि आत्मा कहीं अन्यत्र नहीं है, उसे खोजना नहीं है। यह देह तो आत्म-प्राप्त ही है, पर वह 'मन' के बन्धन में केवल विस्मृत हो गई है, उसे पुनः स्मृति में लाना है। इसके लिए मात्र सुरति ही पर्याप्त है और कुछ नहीं करना है। 'सुरति' ही 'आध्यात्मिक शक्ति' का स्रोत है जो 'सद्गुरु' 'नाम' दान से शिष्य में जाग्रत करता है। परमपिता जिसे सन्तत्व की धारा में परमपुरुष अथवा सत्यपुरुष कहा है उसी के मानव रूप 'सद्गुरु' का हम अपने अन्दर स्थान बना लें, यही पर्याप्त है। सद्गुरु की सुरति रखी तो सद्गुरुमय हो जाओगे। काल के बन्धनों से मुक्ति हेतु सद्गुरु की अनुकम्पा और सुरति ही लक्ष्य हो तो फिर कोई बँधन नहीं रहेगा।

आत्मा का स्वरूप ही आनंद है, वह उसका कोई गुण नहीं, वरन् उसका 'स्वरूप' ही है। आत्मा को आनंद कहीं से लेना नहीं है क्योंकि आत्मा स्वयं ही आनंदमयी है। परमात्म सत्ता की दृष्टि से जो आत्मा है, अनुभूति की दृष्टि से वही आनंद है। 'आध्यात्मिक शक्ति' में 'आत्मा' की अनुभूति निहित है।

स्वर्गादि के सुख आत्मानंद नहीं है, वह आनंद का मिथ्या आभास है, आनंद नहीं। तीनों लोकों का स्वर्ग-नरक, जन्म-मरण का बँधन सच्चिदानंद नहीं क्षणिक सुख भ्रम है। यह चौरासी लाख योनियों की अनन्त यात्रा का दुखद चक्र है।

सद्गुरु शब्द अर्थात् सार-शब्द (नाम) जिसने जान लिया अर्थात् सुरति में उतार लिया तो 'मन' में बस जावेगा। 'सार सबद मन वासी।' जैसे-जैसे तुम 'गुरु' (सद्गुरु) को अपने भीतर बसाओगे, उसकी वाणी को

अपने भीतर गूँजने दोगे तो तुम चकित हो जाओगे। चमत्कार यह होगा कि नाम-भजन द्वारा 'सुरति' से तुम्हारे भीतर की सुप्त-शक्तियाँ जाग्रत होकर 'आध्यात्मिक उर्जा' तुम्हारे भीतर प्रविष्ट होने लगेंगी। तुम्हारे भीतर जो 'शब्द' सोया पड़ा है, जन्मों-जन्मों से, वह जाग उठता है। तुम जीवन्त हो जाते हो।

सोई शब्द निज सार है, जो गुरु दिया बताय।

बलिहारी वा गुरुन की, सीष वियोग न जाय॥

सद्गुरु अपनी 'सुरति' से शिष्य के भीतर पड़े सार-शब्द [आत्मा के नाम] को ध्वनित कर देते हैं; फिर तुम्हें अपनी स्मृति से भागने भी नहीं देता। हर चेष्टा करता है कि तुम्हारे भीतर जो चेतना दबी पड़ी है वह बीज की तरह फूट जाये, अंकुरित हो जाए।

असत्य को [जन्म-मृत्यु को] जन्मों-जन्मों तक पचाया है। असत्य कड़वा है, जहर है लेकिन जन्म-जन्मांतर का अभ्यास रुचिकर हो गया है, प्रिय लगने लगा है। जिसे जहर मीठा लगने लगे उसे अमृत कड़वा लगेगा क्योंकि असत्य से सत्य बिल्कुल उल्टा है। इसलिये शुरू-शुरू में सत्य कड़वा लगता है। इसलिए कबीर साहिब कठोर मालूम होते हैं, विपरीत लगते हैं जगत के धर्मवालों को। इसलिए सद्गुरु तीर की तरह चुभ जाता है। यह चुभन तुम्हारी गलत आदतों का परिणाम थी जिसे 'आध्यात्मिक शक्ति' से मिटा दिया, आत्मनुभूति में बदल दिया। मन की सुरति से सद्गुरु सुरति में बदल दिया, यह सुरति योग है।

सुरत कलारी भई मतवारी, पी गई मधवा बिन तौले।

आज के धोखाधड़ी के युग में हजारों गुरु, संत और सद्गुरु होने का ढोंग रचकर 'सद्गुरु' के वर्णित लक्षणों का दिखावा कर रहे हैं। सद्गुरु 'लक्षण' धारण कर दिखाते नहीं हैं, उनकी आध्यात्मिक आभा से यह लक्षण फूट पड़ते हैं। हृदय आलोकित हो उठता है। पुष्पों की सुगन्ध धारण नहीं करनी पड़ती; सुगन्ध स्वयं ही फूट पड़ती है, गुलाब, चमेली, केवड़ा से। इसलिये, सद्गुरु की कोई पूर्ण तस्वीर नहीं खींच पाता है। ऊपर-ऊपर के लक्षण लिखे जाते हैं सद्गुरु आध्यात्म के, भीतर की तस्वीर नहीं उतार सकते। बाहर-बाहर की बातें होती हैं दुनिया के धर्म-गुरुओं के पास।

जानने वाले, जिज्ञासु लोग कठिनाई में पड़ जाते हैं।

केवल लक्षणों पर मत जाना, हँसों के वेष में बहुत बगुले खड़े हैं साधु बनकर। तुम बुद्धि के घेरे में बँधकर रहोगे और बगुला तुम्हें फाँस लेगा। हृदय की सुनना मुक्त-भाव से तो सद्गुरु जरूर मिल जायेगा। सद्गुरु सदा मौजूद है। प्यासा कोई हो, सरोवर सब में मौजूद है। बस, सजग आँख और बड़ी गहरी प्यास चाहिए तो सद्गुरु को खोज लिया उसकी आधी आध्यात्मिक यात्रा पूरी हो गई, तुम्हारा एक हाथ परमात्मा के हाथ में पहुँच ही गया। सद्गुरु से 'नाम' दान पाकर तो सुरति परमात्मा से ही मिल गई। सद्गुरु की सुरति से शिष्य की सुरति का योग ( जुड़ना ) ही आध्यात्मिक शक्ति है।

जिसकी आत्मा का सद्गुरु सुरति से साक्षात्कार हो गया वह तो तुरियातीत अवस्था और विज्ञान-देही से पार निकल गया। इसी सुरति-योग की 'आध्यात्मिक शक्ति' से परमपुरुष अर्थात् सर्वशक्तिमान परमेश्वर से अभेद होना होता है।

सच्चे संत बारम्बार मानवता को चेताते रहे हैं कि इस जीवन के रहते संसार के भटकावों से निकलें और आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करें। इसको जाना तो जीवन-मरण के चक्र से निकल सकोगे जो अंतिम सत्य, निजधाम है। मनुष्य योनि पाकर भी जो इसे न जान सका, वह खाली आया और खाली गया। उसने जन्म गंवाया और भिखारी की तरह मरा। कबीर साहिब से अध्यात्म का सत्य नाम पाकर सेठ धर्मदास अध्यात्म के सम्राट बन गए इसलिये साहिब ने उनको 'धनी धर्मदास' कहा। शिष्य होकर धनी धर्मदास ने अक्षत धन पा लिया; नाम भजन और सुरति का धन। वह जीवित रहते अमरलोक के शाश्वत रहस्य को पाकर 'आत्मा' को जानकर गए। फिर मरना नहीं होगा केवल शरीर त्यागना होगा। फिर मृत्यु नहीं है। दुनिया में सब लोग बाहर से जुड़े हैं, मृत्यु बाहर से ही तोड़ती है। जैसे ही हम भीतर से जुड़ गये, फिर मृत्यु हमें नहीं तोड़ सकती।

आध्यात्मिकता और धार्मिकता सद्गुरु में पूर्ण समर्पण से ही मिलेगी। समर्पण का अर्थ है 'मैं' भाव की अकड़ छोड़ना, यह भाव रखना कि अब

तेरी मर्जी ! जो करवाये, जैसा करवाये, तू ही करने वाला है। मैं करता नहीं हूँ, तू कर्ता है, तेरा जीवन, तेरी मौत, तेरी हार, तेरी जीत। तेरा सौन्दर्य, तेरी कुरूपता, सब तेरा। बुरा भी तेरा, भला भी तेरा। ऊँचाई की तरफ जो चलता है, उसे अकेला हो जाना पड़ता है। भीड़ ऊँचाई पर उठने का विचार नहीं करती। भीड़ तो भीड़ है, भेड़चाल उसकी शैली है। इसीलिये पुजारी और कथावाचकों के पास अत्याधिक भीड़ इकट्ठी होती है। सन्तों के पास अकेले ही जाना पड़ता है। सारी भीड़ के साथ जाने वाला लकीर का फकीर है, आत्मज्ञानी नहीं।

आध्यात्मिकता का अर्थ होता है, अकेले जाने की सामर्थ्य। अपने पर इतना भरोसा कि अकेला भी जी सकूँगा। ऐसा व्यक्ति ही सद्गुरु को 'आध्यात्मिक शक्ति' का आधार मानता है। वह पहले अनुभव प्राप्त करता है, फिर मानता है। यह बड़े साहस का सफर है। सद्गुरु ऐसा 'सत्य' है जो शिष्य के रोम-रोम में रम जाता है। इसमें भ्रम की कोई आशंका नहीं रहती।

मिटो ताकि पा सको। 'दिल का हुजरा साफ कर, जानां के आने के लिए।' कई लोग नाम-दान के पश्चात सद्गुरु के सूक्ष्म रूप, ज्योतिर्मय स्वरूप, अथवा परमात्मा की झलक तो पाना चाहते हैं; लेकिन 'समर्पण' जैसी कीमत नहीं चुकाना चाहते। फिर जो झलक मिलेगी तो वो मन के खेल की होगी। परमात्मा तो एक अनुभव है, एक स्वाद है, जो पूरे प्राण पर फैल जाता है, रोम-रोम में समा जाता है। यह एक अनुभूति है, जैसे प्रेम की अनुभूति होती है, ऐसी ही यह अनुभूति है।

सुरत बाँध गुरुहिं समावे। वस्तु अगोचर तबहिं पावे।

जिन जिन नाम सुने हैं काना। नर्क न परे होय मुक्ति निदाना॥

निः तत्व भेद यह गुप्त है, पाँच तीन से न्यार।

निःतत्वी जो हँस है, जैहें पुरुष दरबार॥

तीन लोक के बाहिरे, सात सुरति के पार।

तहवाँ हँस पहुँचावहूँ, समरथ के दरबार॥



# स्वतः सहज वह शब्द है

---

स्वतः सहज वह शब्द है, सार शब्द कह सोय।

सब शब्दों में शब्द है, सबका कारण सोय॥

इस भौतिक संसार को इसी के तत्वों प्रकृति, सूर्य, चन्द्र, तारे, आकाश, पहाड़, नदी, झरनों, सागर, रेगिस्तान की उपमाओं के शब्दों से समझाया जा सकता है। ‘शब्द’ भी केवल भाषाओं अक्षरों के स्वर-व्यञ्जन आधारित अथवा नेत्रों, इशारों के भाव से। ‘आत्मा’ शब्दातीत है। आत्मा का ज्ञान, ‘आध्यात्मिक शक्ति’ से अर्थात् आत्मा के ही नेत्रों से होता है, जो स्वतः सहज सार-शब्द है। ‘आत्मा’ अर्थात् स्वयं परमपुरुष ‘सुरति’ जो सृष्टि का कारण सब जीवों की चेतना है। आत्मा कहाँ है, मनुष्यों को कुछ पता नहीं चल रहा है। आत्मा को मान सभी रहे हैं कि शरीर के नष्ट होने के बाद कुछ बचता है। जो बचता है उसे ही कर्मफल या पुण्य-पाप का फल भोगना है। मुस्लिम उसी शेष को ‘रूह’ कह रहे हैं तो ईसाई-धर्म में उसे ‘SOUL’ माना जा रहा है। वो तो शब्दातीत तत्व है, जिसे विज्ञान और चिकित्सा विज्ञान, सृष्टि और जीव-शरीरों में खोज रहा है। सद्गुरु-संतों ने जिसे जीव-सृष्टि का चैतन्य तत्व कहा है जो केवल सुरति के अनुभव का विषय है, अध्यात्म का विषय है।

मुक्ति की सभी चेष्टा तो करते हैं, पर जिसने भी जो कुछ पकड़ रखा है उसे नहीं छोड़ता। भूतों को मानकर मसान की ही पूजा-भक्ति में लगे रहते हैं। मनुष्यों ने अपने पूर्वजों का, परिवारजनों का पंच-भौतिक शरीर नष्ट होते देखा। शरीर की कर्म-ज्ञानेन्द्रियों के साथ ही अन्तःकरण की चार इन्द्रियाँ मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार भी नष्ट होता है। पूरा व्यक्तित्व ही तो नष्ट होता है जो दिखाई देता रहा था। यह आत्मा नहीं है। अविनाशी-चेतन-अमल-सहज-सुखराशि इन पाँच अमरगुणों से युक्त आत्मा नष्ट नहीं हो सकती।

‘आध्यात्मिक शक्ति’ इसी ‘आत्मा’ का विषय है जिसका ज्ञान एक पूर्ण गुरु अर्थात् सद्गुरु की शरण पाकर होता है।

कोई धर्मी है, कोई बुद्धिमान है, कोई सीधा है, कोई क्रूर है — हिंसक है तो कोई ठग और चोर है। लोभ, विषय, विकार, घृणा, प्रेम सबमें नजर आ रहा है। दान, पुण्य, व्रत, पूजा, यज्ञ तीर्थों और मंदिर-मस्जिद-गिरजा-गुरुद्वारों में बड़ी भीड़ दिख रही है। आत्म व्यवहार दिखाई नहीं दे रहा है, यह व्यक्तित्व है, आत्मा नहीं। शरीर और मन के धर्म का पालन सब कर रहे हैं। सर्गुण (साकार) भौतिक-तत्त्वों और देह-पिण्ड के योग-केन्द्रों में छिपे निराकार तत्त्वों की सेवा भक्ति ही जगत के लोग कर रहे हैं।

**आत्मज्ञान बिना नर भटके, क्या मथुरा क्या काशी।**

जिस प्रकार भौतिक शिक्षा के अलग-अलग विभाग हैं चिकित्सा शिक्षा, अंतरिक्ष विज्ञान, भू-विज्ञान, गणित, भाषा, कला, प्रशासन आदि। एक इंजीनियर ही अपना इंजीनियर होने का ज्ञान 5 वर्ष में अपने छात्र को देकर इंजीनियर बनाता है। एक डाक्टर ही अपने छात्र को 5 वर्ष में अपनी डाक्टरी विद्या देकर अपने जैसा बनाता है। इसी प्रकार धर्म क्षेत्र में जो ज्ञान जिस गुरु के पास होगा वही अपने शिष्य को देकर अपने समान बनायेगा। प्राचीन काल में साकार (सर्गुण) भक्ति नहीं थी। हमारे तपस्वी, ऋषि, मुनि, सन्यासी ने ध्यान-योग से ही अपने शरीर के केन्द्रों को जागृत कर पिण्ड-ब्रह्माण्डों का तत्त्व ज्ञान अर्जित किया जो अपने भाषा-शब्दों में बताया। फिर उसी तत्त्व-ज्ञान को विद्वानों ने लिखकर टीकायें की, व्याख्यायें की और मंत्र लिखे। इसी से श्रुतियाँ और पुराण बने। भिन्न-भिन्न मत-मतांतरों से भ्रांतियाँ उत्पन्न हुई। ऋषि और सन्यासी तपस्वियों के बताये गए ब्रह्माण्डीय अनुभवों के आधार पर गुरुओं और देवी-देवताओं की मूर्तियाँ गढ़ी गई। इस तरह कालांतर में भिन्न-भिन्न अवतारों की मूर्तियों को ही पूजा-भक्ति और मुक्ति का मार्ग माना जाने लगा। अलग-अलग मत-मतांतरों के गुरु अपने शिष्यों (छात्रों) को अपने-अपने देवता-भगवानों का पूजा ज्ञान-मंत्र देकर मुक्ति मार्ग बताने लगे। दान, पुण्य, कथा, तीर्थ-स्नान, मूर्ति-पूजा की प्राथमिक धर्म शिक्षा ही



मनुष्यों को अपने योग्य कर्म-भक्ति बन गए। धर्म शिक्षा के छः विभाग बने (1) योगी, (2) जंगम, (3) सेवड़ा, (4) सन्यासी, (5) ब्राह्मण [कर्मकाण्डी], (6) दर्वेश। अब इन षट्दर्शन के गुरु विशेष भी नहीं रहकर सब गडमड हो गए हैं। सन्यासी और योग क्रिया केवल ब्रह्मचारियों के लिए हैं किन्तु गृहस्थ भी योग-साधना कर रहे हैं जो धर्मयुक्त नहीं है। इसलिये साहिब ने शिक्षा देते हुए कहा —

जाका गुरु है अन्धला, चेला भी है अन्ध।  
अंधले अंधला ठेलिया दोनों कूप पड़न्त।  
जाका गुरु है गृही, चेला गृही होय।  
कीच कीच के धोवते, दाग न छूटै कोय॥  
गुरुवा तो घर घर फिरें, दीक्षा हमरी लेहू।  
के बूड़ौ के ऊबरौ, टका पर्दनी देहू॥

सर्गुण और निर्गुण गुरु अपने शिष्यों को केवल मार्ग या उपाय बताने वाले होते हैं। पार लगाने वाले नहीं। साधना, कमाई की कठिन से कठिन मेहनत कर शिष्य लक्ष्य तय करे या भटक जाये गुरु की जिम्मेदारी नहीं है। सब 'मन' के खेल पर निर्भर है। मन ने सभी कर्मों, पूजा-भक्तियों में 'आत्म शक्ति' (सुरति) को अपने साथ बाँधकर उसी ऊर्जा से शरीर-इन्द्रियों के कर्म में बाँधा है। ध्यान (आत्मा) सब कर्मों में 'मन' की शक्ति है। 'ध्यान' ही दिव्य-दृष्टि है। श्रीकृष्ण ने अपने शिष्य रूप अर्जुन को युद्ध क्षेत्र में ध्यान-एकाग्र करने का ही उपदेश देकर अपना 'विराट स्वरूप' दिखाया। यही 'आत्मा' की शक्ति से 'मन' की एकाग्रता का विधाता स्वरूप है। इसीलिये कहा जाता है जो कुछ भी 'व्यक्ति' कर रहा है सब कुछ विधाता करवा रहा है। वही (मन) कर्ता है। सुरति इसी तरह सब कर्मों में मन के साथ रहकर संसार के मायाजाल और जीव-शरीरों के बँधन में है। 'आत्मा' अपने मूल परमपुरुष से बिछुड़ कर स्वयं को ही भूली है। 'सद्गुरु' रूप परमात्मा ही उस मूल सुरति से शिष्य की सुरति को उसका स्मरण कराता है। आत्मा को हुए विस्मरण (भूल) से जाग्रत कर मन रूप

निरञ्जन की पहचान देकर उससे अलग करता है।

सद्गुरु द्वारा दिया जाने वाला नाम-दान ही निःशब्द निज-सार है जो सुरति को परमपुरुष से जोड़ता है। दरिया साहिब ने कहा —

सत्यनाम निज सार है, अमरलोक ले जाय।  
कहैं 'दरिया' सतगुरु मिलै, संशय सकल मिटाय॥  
जैसे तिल में फूल है, वास जो रहा समाय।  
ऐसे शब्द संजीवनी, सब घट सुरति दिखाय॥

सद्गुरु को खोजना ही 'सत्य' के मार्ग की पहली सीढ़ी है। सद्गुरु को पहचानना होगा। झूठे, उच्च वर्ण, भेष, धन, सम्पदा वाले या सुन्दर देह वाले को गुरु बनाना, 'सद्गुरु' की पहचान नहीं है। झूठे गुरु को शीघ्र त्याग कर सत्य 'शब्द' के धनी सद्गुरु की शरण लेना चाहिए। शब्द का रहस्य न मिलने से चौरासी का फेरा नहीं मिटता।

गुरु किया जो देह का, सतगुरु चीन्हा नाहिं।  
भवसागर की जाल में फिरि फिर गोता खाहिं॥  
झूठे गुरु के पक्ष को, तजत न कीजै बार।  
द्वार न पावैं शब्द का भटके बारंबार॥

पूर्ण गुरु की पहचान है, (1) निर्वासना, (2) निष्कामी, (3) निर्लोभी, (4) निर्बन्ध, (5) सारग्राही, (6) सर्वज्ञी और (7) परमात्मलीन। इन छः गुणों से युक्त गुरु ही परमपुरुष सुरति में समाया होगा वही 'सद्गुरु' शब्द का धनी है। ऐसे सद्गुरु के सानिध्य-सत्संग के सरोवर में जो डुबकी लगाते हैं, वे ही 'भक्त' सुरति 'शब्द' के पारखी होते हैं। साहिब की वाणी है —

साधो सो सद्गुरु मोहि भावै।

सतनाम का भरि-भरि प्याला, आप पीवे मोहि प्यावै॥

जब सद्गुरु से पहचान होती है तब गुरु और शिष्य में भेद नहीं रहता। 'सुरति' का अर्थ हमारी अपनी ही पहचान, हमारा अपना स्मरण, हमारी अपनी याददाश्त है। बस, सद्गुरु की सुरति से मिलन और झलक से

‘आत्मा’ (सुरति) मन से अलग अपने सरूप को पा लेती है। अरबों मील प्रति सेकेण्ड की गति से शिष्य की ‘सुरति’ को सद्गुरु तीन-लोकों से पार निज-लोक ले जाने में समर्थ हैं। रहस्य का ग्यारहवाँ महाद्वार खुलने लगता है। **‘जब पहिचान होत तुमसे, सुरति सुरति से मिलावत।’**

यदि खरा खोटा नहीं परखोगे तो अन्धे बनकर अपने ही ‘मूल’ का नाश करोगे। औषधि, किस रोग की है, पहले यह जान लो। कौन-सा शब्द सब दुःखों को दूर करने वाला है यह समझना होगा। शब्द से ही प्रकाश का विचार होता है क्योंकि प्रकाश से ही सबमें उजाला होता है। इसी प्रकार सद्गुरु कहलाने का वही अधिकारी है जो जीवन-मरण का आवागमन चक्र नष्ट कर दे। किसी भी अधूरे गुरु की सेवा और सानिध्य में रहना अज्ञान के अंधेरे में भटकने जैसा ही है। गुरुमत और मनमत का भेद जानकर ही जीव अपना कल्याण कर सकेगा। ऐसे किसी गुरु से कल्याण नहीं होगा जो केवल शास्त्र-अध्ययन का पढ़ा ज्ञान रखता हो। केवल विद्वान व्याख्याता हो लेकिन स्वयं उस लोक का कोई अनुभव नहीं रखता हो जो तीन लोकों से परे अनश्वर लोक है। **‘आकाश’** तत्व की प्रकृति के **शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध** के पाँच द्वारों से ही सब पंच-तत्व रूपी औषधि खोज रहे हैं। इन्हीं पाँच रास्तों में कोई सूक्ष्म, पतला और कोई बड़ा, मोटा होना खोज पाता है। इसलिये मत भिन्नता है और व्यवहार में असमानता है।

**‘शब्द’** इतना झीना या महीन पवन रूप है कि अनल रूप भी उससे मोटा है। अनल से जल मोटा है और जल से मोटी पृथ्वी है। जल में यदि कुछ पड़ा हुआ है तो दिखाई दे जाता है पर जल से पतला प्रकाश है जिसमें धरती और आकाश दोनों दिखते हैं। ‘हाल ही में (नवभारत 9.9.2014) भोपाल शहर के एक युवा वैज्ञानिक 23 वर्षीय अमित (12वीं उत्तीर्ण) ने अपने शोध में पाया है कि ब्रह्माण्ड प्रकाश है और प्रकाश घूमता नहीं बल्कि स्थिर है। साथ ही प्रकाश ब्रह्माण्ड का केन्द्र भी है। क्योंकि प्रकाश खुद सिग्युलरिटी है इसलिये वो अपने पथ के अनुसार

ब्लेक-होल के केन्द्र में चलता नजर आता है। साथ ही पूरा ब्रह्माण्ड तथा ब्लेक-होल सूर्य, तारों का केन्द्र भी सिग्युलरिटी है।'

इन सब रूपों में भी 'शब्द' ही सबसे प्रकाश मान है जिससे पूरा संसार दिखाई देता है। भूत, भविष्य और वर्तमान सभी 'शब्द' के भीतर समाय है। 'शब्द' में गहरे उतरने पर ही साधक पाता है कि 'अनल', शब्द के भीतर ही रहता है। इस 'अनल' के मध्य जाकर ही जल दिखाई देगा और फिर जल के भीतर पृथ्वी पाओगे। यही निरञ्जन का खेल है। कबीर साहिब ने साखी से समझाया —

रैन समानी भानु में, भानु अकाशो माहीं।

अकाश समाना शब्द में, शब्द रहा कछु नाहीं॥

अर्थात्, 'शब्द' (धुनात्मक या अनहद) भी तीन लोकों में ही ध्वनित है। पाँच तत्वों के भीतर 'आकाश' (शून्य) में भी शब्द है। अनहद धुनें शब्द का ही रूप हैं। बिना दो के मिलें धुन नहीं हो सकती अर्थात् 'द्वैत' में ही धुन हैं, शब्द है। यही गूढ़ रहस्य निराकार (निर्गुण) भक्ति का अपनी वाणी में साहिब ने बताया कि —

प्रथमै पूरण पुरुष पुरातन, पाँच शब्द उच्चार।

सोहं शब्द निरञ्जन कहिये, ररंकार ओंकारा॥

पाँच शब्द औ तत्व प्रकृति, तीनों गुण उपजाया।

लोक दीप औ चार खानि रचि, चौरासी लाख बनाया॥

शब्दै निर्गुण शब्दै सर्गुण, शब्दै वेद बखाना।

शब्दै पुनि काया के भीतर, करि बैठे अस्थाना॥

ज्ञानी योगी पंडित सबही, शब्दै में अरुझाना।

पाँच शब्द औ पाँचों मुद्रा, काया बीच ठिकाना॥

शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध रूपी ये पाँचों औषधियाँ, पाँच तत्व के रोगों से बाहर जाने का निदान नहीं हैं। पाँच तत्वों और पाँच-शब्द मुद्राओं की योग-भक्ति भी इसी प्रकार मोटा और झीना व्यवहार ज्ञान है। जीव-मुक्ति की ये सब औषधियाँ अन्न-जल के समान पेट में ही समाती हैं। जिस

प्रकार अन्न-जल से पेट की भूख-प्यास सदा के लिए नहीं मिटती है उसी प्रकार योग-मुद्राओं से वायु 'शून्य' तक जाकर पुनः पेट को ही लौटती है। बस कुछ समय या अवधि का आनन्द ही 'परम' का आभास देता है, फिर शरीर में ही आना-जाना (मृत्यु चक्र) होता है।

'शब्द' के बिना 'सुरति' भी अँधी है, इसलिये मन के वश में है। उसे सूझता ही नहीं कि शरीर के सिवा कहाँ जाए। शब्द रूपी दरवाजा नहीं पाने से बार-बार अँधेरे में भटक रही है। किसी भी शास्त्र-धर्म गुरु से सुरति को वह द्वार नहीं मिलेगा जो स्वतः सहज 'सार-शब्द' प्रकाश है। सभी गुरु सत्य के भेदी नहीं हैं। साहिब ने ऐसे पूर्ण गुरु की शरण लेने को कहा जो सत्य 'सार-नाम' (शब्द) से सुरति को चेतन कर दे।

सद्गुरु के मूल-शब्द से शरीर के अंग और इन्द्रियों के स्नायु-मण्डलों को जाग्रत करने की साधना नहीं बताई जाती। सद्गुरु तो उस अबूझ सुरति को जाग्रत कर देते हैं जो मन-माया के भ्रमों में रहकर स्वयं को भूल गई है। बिना सद्गुरु के आत्मा के रोग का निदान नहीं होगा, आत्मा का निर्वाण नहीं होगा। अनेक धर्म बताने वाले वैद्य गुरुओं की औषधियों (उपायों) से जीवात्मा यम के फन्दों में ही उलझती है।

सद्गुरु की संतत्व धारा में लौकिक-ज्ञान से कुछ भी लेना-देना नहीं है। इसलिये बड़े-बड़े ज्ञानियों ने संतों के शिष्य होकर ही मुक्ति की युक्ति जानी। सद्गुरु संतमत में मान्यता है कि गुरु के ज्ञान से अज्ञान नहीं जाता, केवल गुरु 'कृपा' से अज्ञान का अंधकार नष्ट होकर सुरति मुक्त होती है। सद्गुरु साधारण और सरल संत होते हैं। एक सहज-सरल 'संत' गुरु का शिष्य होने का अर्थ है गुरु का आश्रित होना क्योंकि एक पूर्ण-गुरु के पास देने के लिए 'कृपा' है। ऐसे गुरु से सार-शब्द के अलावा कुछ ओर मिल जाए तो उसे 'बोनस' मानिये। साहिब कहते हैं सद्गुरु में 'कृपा' की पूँजी परमपुरुष से आ रही होती है जो आपको भी मिलेगी। इसी कृपा से सुरति को ज्ञान और अज्ञान के झमेले से मुक्ति मिलती है। यही कृपा, सहज, सार-शब्द है, जो शिष्य को नाम-दान के रूप में सुरति-योग से दी जाती है।

वाणी है —

स्वतः सहज वह शब्द है, सार-शब्द कह सोय।  
सब शब्दों में शब्द है, सबका कारण सोय॥  
प्रकृति पार वह शब्द है, अगम अचिन्त्य अपार।  
अनुभव सहज समाधि में, अज गुरु चरण अधार॥  
'मीरा बाई' भी कह रही हैं —

मीरा मन मानी सुरति सैल असमानी।  
खोजत फिरौं भेद वा घर का कोउ न करत बखानी।  
रैदास सन्त मिले मोहिं सतगुरु दीन्हीं सुरति सहिदानी।  
मैं मिली जाई पाइ पिया अपना तब मोरि पीर बुझानी।  
'मीरा' खाक खलक सिर डारी मैं अपना घर जानी॥

जब निर्णय करने की वाणी समझ में आ जाती है तो झूठ और खोटे शब्द अपने आप ही लज्जित हो जाते हैं। सद्गुरु के निर्णायक शब्द सबके हितकारी होते हैं, जो इन्हें ग्रहण करता है वही सुख पाता है। सद्गुरु का सार-शब्द 'नाम' ही निर्णायक है जिससे जीवात्मा के 'मोक्ष' का लक्ष्य पूरा होता है। 'सद्गुरु' एक समय जगत में एक ही होता है जिसके सार-शब्द के आश्रित होकर सेवा-सिंमरन से निज का कार्य सिद्ध होता है। निर्णायक 'नाम' शब्द के बिना द्वन्द्व समाप्त नहीं होगा और द्वन्द्व की उलझनों में पड़-पड़ कर मरना होगा। मायावी दुनिया के झगड़ों में रहना पड़ेगा। जहाँ भी झगड़ा है, द्वन्द्व है वहाँ कभी 'गुरुमत' नहीं होता।

सार-नाम की महिमा का उल्लेख कबीर साहिब ने अपनी वाणी में किया है जो विदेह और जीवन्त नाम है। वो 'शब्द' बावन अक्षरों से परे है, चौथे लोक (अमरलोक) की वस्तु है जो इस ब्रह्माण्ड में कहीं नहीं है। सार-नाम के सम्बंध में केवल कबीर-सागर में उल्लेख है, किसी अन्य धर्मग्रंथ में नहीं है।

भक्ति साहिब की बहुत बारीक है,  
शीश सौं पे बिना नाहीं मिले।

सत्य-भक्ति की प्राप्ति सद्गुरु को अपना शीश (अहम/मैं) सौंपे बिना नहीं होगी। आनन्द इस संसार की किसी वस्तु/पदार्थ में नहीं है। आनन्द केवल आपके 'ध्यान' के अन्दर है। आपका ध्यान ही आपकी 'आत्मा' है। यह केवल निराकार 'मन' का खेल है जो आपको आनन्द की अनुभूति संसार की वस्तुओं/पदार्थों में करवा रहा है ताकि आप पलभर के लिए भी इसके (मन के) मायावी संसार से विमुख न हो सकें। साहिब ने संसार में किसी नये धर्म की स्थापना नहीं की बल्कि 'सत्य' को ही संसार का सबसे उत्तम और उत्कृष्ट धर्म माना। साहिब ने सम्पूर्ण मानव जाति को 'सत्य' और 'अहिंसा' का सर्वोत्कृष्ट पाठ पढ़ाया और 'सत्य' की अर्थात् सत्यपुरुष की सहज प्राप्ति के लिए मानव जाति को एक पूर्ण 'सद्गुरु' की शरणागत होने का सन्देश दिया। इस संसार में विरले जीव ही सच्चे 'साहिब' की 'कृपा' और 'महिमा' को जान-पहचान पाते हैं।

निराकार कालपुरुष जानता है कि अगर 'आत्मा' अपने स्वरूप को जान गई तो फिर उसके कहने पर नहीं चलेगी। इसलिये 'मन' स्वयं आत्मा का तद्रूप बनकर 'परमात्मा' बन गया है। आत्मा भी खुद को 'मन' मान रही है। आत्मा खुद को अब शरीर मान रही है। आत्मा का ऐसा मान लेना ही सभी बँधनों का मूल-कारण है।

हर कोई गुरु शब्द-शब्द कह रहा है, कोई भी अकह सार-शब्द भेद नहीं जानता। इसीलिये साहिब ने वाणी में समझाया—

कायागढ़ जीतो रे भाई, तेरी काल अवध टर जाई।  
 भर्म कोट चहुँ ओर फिराये, माया ख्याल रचाई।  
 कनक कामिनी फंदा रोपे, जग राखे उरझाई।  
 पच्चीस जाल जाके निसदिन व्यापे काम क्रोध दो भाई।  
 लालच लोभ खड़े दरवाजे, मोह करे ठकुराई॥  
 सात कैवल त्रिकुटी के ऊपर, तहवाँ पहुँचे जाई।  
 जोत निरञ्जन तहाँ बिराजे, वेद नेति कहि गाई।  
 आवागमन वेद न जाने, कुरान रहे ठहराई।  
 आवे न जाय मरे न जीवे, ताकी खबर न पाई॥

हेलिकाप्टर में उड़ने की क्षमता है; हवाई जहाज में भी उड़ने की क्षमता है; किन्तु कोई व्यक्ति यदि आपसे कहे कि वो हेलिकाप्टर में बैठकर या हवाई जहाज में बैठकर 'चाँद' पर पहुँच गया, तो क्या आप उस व्यक्ति की बात को सच मानेंगे? नहीं मानेंगे। क्यों सच नहीं मानेंगे? क्योंकि आप जानते हैं कि हेलिकाप्टर, हवाई जहाज उड़ तो सकता है, मगर किसी कीमत पर 'चाँद' तक नहीं पहुँच सकता। इसी प्रकार जब कोई गुरु कहता है कि 'पाँच-शब्दों' [ सोहंग-सत्-ज्योति निरञ्जन-ओंकार-रंकार ] की या 'सतनाम' की 'कमाई' के द्वारा जीवात्मा को 'अमरलोक' की प्राप्ति हो जायेगी, तब मैं जान जाता हूँ कि उस गुरु ने अभी तक 'मन' (निरञ्जन) के सच्चे स्वरूप को जाना ही नहीं है; अभी तक 'आत्म-तत्व' को छुआ नहीं है।

इस दुनिया में बहुत 'पंथ' हैं, मत हैं जो 'अमरलोक' मोक्ष की बात कर रहे हैं। आप लोग भ्रमित नहीं होना। मैं जानता हूँ कि उन पंथों/मतों के गुरु-जन को 'अमरलोक' की यथार्थ अनुभूति नहीं है। वे केवल कबीर साहिब की वाणियाँ पढ़कर अपनी समझ के अनुसार अमरलोक की व्याख्या कर रहे हैं। कुछ कह रहे हैं कि अमरलोक में 'अनहद धुनें' हो रही हैं; कुछ कह रहे हैं कि अमरलोक में 'दूध' की नदी वह रही हैं; कुछ कह रहे हैं कि अमरलोक में 'फलों के बाग' हैं इत्यादि। आपको सच बता रहा हूँ, अमरलोक में ऐसा कुछ भी नहीं है। 'परमपुरुष ही सत्यलोक' है वहाँ सूर्य, चंद्र, नदी, पहाड़ बाग-बगीचे नहीं हँस-रूप आत्मा परमपुरुष की 'अँश' परमपुरुष में ही विलीन होकर आनंद के सागर में समा जाती है। जैसे समुद्र जल की बूँद समुद्र में गिरकर समुद्र ही हो जाती है।

लोक अनंत देखिये ताही। सर्वाकार रूप है जाही॥  
 पुर्षरूप का वर्णों भाई। वर्णत बने न होय दिठाई॥  
 पुरुष शोभा अगम अपारा। मुख अनंत नहीं पावे पारा॥  
 चिकुर शोभा कहों बुझाई। कोटिन रवि शशि रोम लजाई॥  
 कोटिन चंद सूर प्रकाशा। एक एक रोम अनन्तन भाषा॥



पुरुष अंग का करौं बखाना । रचना कोट तासुमों जाना ॥

श्वेत अकार पुरुष को अंगा । फटक वर्ण देही को रंगा ॥

शब्द स्वरूप पुरुष है भाई । वर्णों कहा वर्ण नहिं जाई ॥

आत्मानन्द सद्गुरु के ध्यान से ही सम्भव है क्योंकि उनकी सुरति मिलने पर ही हमारी सुरति मूल आनन्द की तरफ जायेगी सद्गुरु की सुरति ( ध्यान-आत्मा ) बँधन मुक्त है, चैतन्य है, जैसे ही आप उनका ध्यान करोगे तो सुरति शुद्ध होकर आत्मा का स्वरूप यानि मूल-आनन्द प्राप्त करेगी । 'वस्तु कहीं ढूँढ़े कहीं' वाली बात है । मजा आत्मा में है, ढूँढ़, बाहर रहे हैं । सुरति की सत्य-शब्द से पहचान खो गई है । सद्गुरु रूप भेदी साथ होगा तो बतायेगा कि आपकी सुरति कहाँ खो गई है; किस प्रतीति में फँस गई है । केवल बतायेगा ही नहीं सुरति को आत्मानन्द से जोड़ भी देगा । वाणी है—

वस्तु कहीं ढूँढ़े कहीं, केहि विधि आवे हाथ ।

कहै कबीर सब पाइय जब भेदी लीजै साथ ॥

भेदी लीन्हा साथ करि, दीन्ही वस्तु लखाये ।

कोटि जनम का पथ था पल में पहुँचा जाय ॥

जब तक सुरति संसार के माया-जाल में भटक रही है, वेदों के पढ़ने से भेद नहीं पायेगी । सद्गुरु से गुप्त भेद पाकर ही सुरति एकाग्र होने पर आत्मस्वरूप की पहचान होगी । बड़े वक्ताओं, गुरुओं को देख-सुनकर निर्णय करना कठिन हो रहा है कि यथार्थ में आत्मज्ञानी कौन है । आदमी उलझ जाता है, समझ नहीं पाता है ।

मुझे इस माया संसार में रहकर और परम-लोक में आत्मा कैसी है, दोनों तरह से आत्मा का बोध है । स्वर्ग-लोक में 'आत्मा' कैसी है, मैं जानता हूँ । शरीर में आत्मा कैसे रह रही हैं, मैं जानता हूँ । शरीर में रहकर आध्यात्मिक व्यवहार करना बड़ा कठिन है, पर मुझे इसका भी ज्ञान है । मैंने इस शरीर में रहकर आत्मनिष्ठ रहना जाना है । मैं भोजन नहीं खाता था । मन कहता था कि खाओ, नहीं तो कमजोर हो जाओगे ।

मैं कहता था कि आत्मा कभी कमजोर होती है क्या! ओ मूर्ख मन, आत्मा को भोजन से क्या लेना। मैं नहीं खाता था।

जब एक बार मैंने अपनी सारी जायदाद भाइयों के नाम की तो माँ ने कहा कि तू अपने पास भी कुछ रख। वो बोली कि इनके तो बच्चे हैं, बुढ़ापे में देख लेंगे, पर तेरा तो पैसा ही काम आयेगा। यानी, माँ खैर चाहती थी। मैंने कहा — माँ एक बात सुन, मैं कभी बूढ़ा नहीं होऊँगा।

मैं अपने शिष्यों से कहता हूँ कि अगर यह शरीर नहीं रहा तो भी आप लोगों से मुलाक़ात करने आ जाऊँगा। जब भी चाहे, मिल लूँगा। फिर, इस शरीर को छोड़ने के बाद एक साकार आधार देकर जाना चाहता हूँ। वो दूर की बात है।

गुरु समाना शिष्य में शिष्य लिया कर नेह।

बिलगाय बिलगे नहीं, एक रूप दो देह॥

शिष्य ने मेरी सुरति धारण की है तो वो मुझसे अलग नहीं है। तो मैंने कहा कि बूढ़ा नहीं होना है। अब माँ कहती कि देखो कहता था कि बूढ़ा नहीं होना, बाल भी सफेद हो रहे हैं, दाढ़ी भी सफेद हो रही हैं। पर सामने नहीं कहती थी।

आप समझें मेरी बात में गहराई है। यह तो शरीर की अवस्था है। मैं जानता हूँ कि बिना पैसे की आय के कैसे जीना है। हर आदमी बुढ़ापे के लिए बचाकर रखता है, क्योंकि बच्चों का कोई भरोसा नहीं है। पर मैं नहीं रखता हूँ। जब कोई माँगता है तो पास खड़े किसी 'नामी' से उधार लेकर भी देना पड़ता है। फिर बाद में लौटा देता हूँ। जंगल से होकर चले जाओगे, कोई डर नहीं लगेगा। लेकिन, लाख रुपये जेब में होंगे तो डरते-चलोगे, इधर-उधर देखते चलोगे। रेलगाड़ी में सफर के दौरान भी परेशान होंगे। मेरी जेब में कभी-कभी लाख-रुपया भी कोई डाल देता है, पर मैं सोचता नहीं हूँ। ज्यादा से ज्यादा क्या होगा, कोई निकालकर ले जायेगा। मुझे चिंता नहीं है, ले जाए। पर मैं लापरवाह भी नहीं हूँ। 'आय का हर्ष नहीं, नहीं गये का गम।'।

सब बने आश्रम चले जाएं तो भी चिंता नहीं, उदास नहीं होने वाला हूँ। किसी चीज से परेशान नहीं होता हूँ। कुछ नहीं होगा तब भी इस शरीर को नचाऊँगा। मेरी उम्र के नज़दीक कोई भी शरीर को ऐसे नचा नहीं पायेगा। छोटे बच्चे भी इसे इतना नचा नहीं पायेंगे। आपने मेरी चाल ढीली नहीं देखी होगी, कभी थका नहीं देखा होगा। क्योंकि मैं इस शरीर रूपी घोड़े के ऊपर बैठा हूँ। पर आप खुद घोड़ा बन गए हैं। मैं इसे घोड़ा बना कर चल रहा हूँ। जहाँ भी कहूँ, यह चल पड़ता है।

मुझे कभी भोजन मिलता है, तो कभी नहीं मिलता है। **‘कभी घी घणा, कभी रूखा चना तो कभी वो भी मना।’** वाली बात है। मुझे आपकी समस्या के कारण खाना पड़ता है। जब नहीं मिलता तो मैं अपनी जगह पर बैठ जाता हूँ, आत्मनिष्ठ हो जाता हूँ। हरेक के हाथ का भी नहीं खाता हूँ। ट्रेन में रेलवे स्टेशन का खाना नहीं खाता हूँ। सफाई की तरफ किसी का ध्यान ही नहीं है। मैं बड़ी सफाई से रहता हूँ। यदि कोई एक करोड़ रूपया दे तो भी ऐसा खाना नहीं खाऊँगा। कई बार तो दो-दो दिन तक बिना खाये रहना पड़ता है, पर इससे परेशान कभी नहीं होता हूँ। क्योंकि मैं रहता ही **‘सुरति’** में हूँ।

एक समय था जब हजारों लोग पीछे पड़े; हमला किया, आश्रम जलाकर मारने की कोशिश की। पर मैं परेशान नहीं हुआ। मैं अपनी जगह पर बैठ गया, आसन में। ज्यादा-से-ज्यादा यह शरीर चला जायेगा। यह तो **‘मन’** की भौतिक जाल में फँसाने की हवस है, जिसके कारण इसे नित्य मान रहे हो।

....तो शरीर बनकर कभी नहीं जीना। रूहानियत यह है। संसार में रहते हुए भी शरीर के लिये ही नहीं जिएं। पूरी दुनिया शरीर की गुलाम है। मैं कभी शरीर का फैशन नहीं करता हूँ। कभी क्रीम-पाउडर नहीं लगाया। छोटा भाई एक दिन बोला कि हम चार आदमी के बीच जाते हैं तो ठीक बनकर जाते हैं; पर आप हैं कि इतनी संगत है, कोई ध्यान नहीं है इस ओर। कभी आपके बाल उठे हुए होते हैं, कपड़े अस्त-व्यस्त, कभी

कुछ। यानी शरीर का अहंकार नहीं रखता हूँ; यह मेरा विषय ही नहीं है। मेरा एक मात्र विषय और लक्ष्य मनुष्यों को 'मन' के दायरे से निकाल कर सत्य-शब्द (आत्मा) का ज्ञान कराना है।

'नाम' दान ग्रहण करने के बाद अब आप में भी आसक्ति नहीं रही। आपकी सुरति को जगा दिया। आपको काल (मन) से सुरक्षित कर दिया। यह है 'शब्द' की रूहानियत। अब आप पाप नहीं कर रहे हैं। यदि गलती होती है तो दुबारा न करने की प्रतिज्ञा कर रहे हैं। आप सभी बुरे कर्मों को छोड़कर सद्गुण ग्रहण कर रहे हैं। मेरा हरेक नामी अपने को जगत से निराला/अलग मानता होगा। साहिब ने कहा भी है — 'करूँ जगत से न्यार।'।

आप अपने अन्दर महसूस करते होंगे कि सबसे अलग हैं। यदि विरोध होगा तो वो लाजिमी है, उसमें भी वजन है। वे लोग अध्यात्म तक नहीं पहुँचे हैं। वे जहाँ तक पहुँचे हैं, जहाँ तक जानते हैं वो बोल रहे हैं। हम निंदा नहीं कर रहे हैं। मैं केवल आध्यात्मिक शक्ति एवं सत्य की बात कर रहा हूँ। 'मन' के भौतिक जगत में मिलने वाले सुख-दुःख की जानकारी दे रहा हूँ आत्मा और उसके निजघर की चेतना दे रहा हूँ।

....हमारे पूर्वजों ने योग-शक्ति द्वारा अत्यंत गहरी कोशिकाओं को जगाया। इस अन्दर की शक्ति को उन्होंने कुछ भी गलत नहीं कहा। कपिल मुनि ने सांख्य-योग में जो अपने अनुभव लिखे, कुछ भी गलत नहीं था। अद्वैत दर्शन में गौड़पाद ने जो अपने अनुभव लिखे, बौद्ध दर्शन में बुद्ध के जो भी अनुभव हैं और योग-दर्शन में पातञ्जली के जो अनुभव हैं कुछ भी असत्य नहीं है। पर वो सब आत्मज्ञान की आध्यात्मिक शक्ति नहीं है। यही अन्तर और भक्ति का लक्ष्य मैं दुनिया के लोगों को बता रहा हूँ।

आत्मज्ञान और धर्म के क्षेत्र में बड़े-बड़े वक्ता-विद्वान और धन-बल के भेषधारी अपनी-अपनी ठकुराई कर रहे हैं। ये सब छल-कपट कहाँ से आई? सब 'आत्मा' से दूर चले जा रहे हैं; इसलिए परेशान हैं। मनुष्य आत्मा से बड़ी दूर चला गया है। मन-माया ने भौतिकवाद में इसे उलझा

दिया है। हमारे पूर्वज ऐसे नहीं थे। शास्त्रों में तो आत्मा की मूल पाँच वृत्तियाँ हैं — अनश्वरता, चेतनता, अमलता, सहजता और आनंदमय। आत्मा का ऐसा स्वरूप दर्शाया गया है। आत्मा बड़ी अद्भुत शक्ति है, बड़ी अनूठी है। बस, यही ‘सुरति’ को जगाने का शब्द जो आत्मा की ही गुप्त शक्ति है एक सद्गुरु ही उससे मिलता है। उससे जोड़ता है।

आत्मा अमर है किसी भी देश काल में नष्ट नहीं होती, इसका विघटन नहीं है, खण्डित नहीं होती, विभाजित नहीं होती। आत्मा भेदी नहीं जा सकती, यह मन-बुद्धि-अहंकार से पृथक है। इसी कारण आत्मा संकल्प-विकल्प से बहुत परे है। इसमें पंच-भौतिक तत्वों का अभाव है। पंच भौतिक तत्व तो एक-दूसरे का विनाश कर देते हैं। आत्मा अविनाशी है।

दूसरा यह कि ‘आत्मा’ परमात्मा की अंश है, सत्यपुरुष की अंश है इसलिये इसमें स्वयंसत्ता समाहित है। इसलिये नाश को प्राप्त नहीं होती है। त्रिलोकों का स्वामी काल निरञ्जन इसी ‘आत्मशक्ति’ को माया रूप सृष्टि और शरीरों में बाँधकर सृष्टि पर राज कर रहा है।

तीसरी बात यह है कि आत्मा स्वयंसत्ता होने से चैतन्य है इसलिये आत्मनिष्ठ रहकर ही आध्यात्म शक्ति प्राप्त होगी। आत्मीय व्यवहार सद्गुरु से उस चेतन सत्ता के योग से ही प्राप्त होगा।

चौथा गुण ‘आत्मा’ अमल है। शरीर की इन्द्रियों के सुखों और आनन्द से आत्मा का कुछ भी लेना देना नहीं है। शरीर की इन्द्रियों के सभी आनंद के साथ गन्दगी है, क्षणिक विषयानंद है, दुःख मिश्रित है। शरीर विकारों से भरा है। इसलिये साहिब ने कहा —

यह तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।

शीश दिये जो गुरु मिले, तो भी सस्ता जान॥

काम-क्रोध-लोभ-मोह-अहंकार के विष से भरे शरीर का शीश जब तक सद्गुरु चरणों में नहीं झुकेगा ‘अमृत’ नहीं मिलेगा। इन्द्रियों के मल-युक्त विकारों के साथ सुखों की तलाश से तो विषयों का क्षणिक आनंद ही मिलेगा। आत्मा की अमलता का परम सुख सद्गुरु शरण में ही मिलेगा।

पांचवाँ आत्म-गुण है, 'आनंदमयी'। शरीर की सीमायें हैं, यह पाँच-भौतिक तत्वों के इर्द-गिर्द और उनमें लिप्त रहकर ही आनंद पाता है। चूँकि आत्मा आनंदमयी है इसलिये शरीर का भौतिक क्षणिक सुख भी आनंददायक लगता है। मनुष्य शरीर से ही विषयानंद की तलाश में रहता है, स्थाई आनंद की तलाश नहीं करता है।

मुँह अच्छा खाने का स्वाद चाहता है। स्वादिष्ठ खाने के आनंद के लिए धन चाहिए। धन कमाने के लिए मनुष्य छल कर रहा है क्योंकि अधिकतम भौतिक साधनों के सुख चाहिये। आँखें अपने सुख के लिए नचा रही हैं। कुछ गन्दी तस्वीरें और फिल्म देख रहे हैं। कोई स्त्री के सुंदर अंगों को देख रहा है, रमणीय दृश्य देखना भी चक्षु पूजा है।

### प्रथम चक्षु इन्द्री को साधो।

#### सुन्दर रूप चक्षु की पूजा।

आदि आदि वाणी शब्द हैं। हरेक इन्द्री अपने-अपने सुख के लिए दौड़ रही है। भौरा नासिका इन्द्री का दीवाना है, वो कमल के फूल पर बैठता है, उसकी महक में आनंदित होता जाता है। शाम को कमल की पंखुड़ियाँ बंद होती हैं। भौरा मस्त होकर नासिका इन्द्री का मजा ले रहा होता है, सोचता है अभी तो आकाश का उजाला दिख रहा है, बाद में उड़ जाऊँगा। थोड़ी देर बाद कमल की पंखुड़ियाँ बन्द हो जाती हैं और भौरा बीच में ही फँसा रह जाता है। ऑक्सीजन न मिल पाने के कारण वो सुबह तक फूल के अंदर ही मर जाता है। इसी तरह मछली जिभ्या स्वाद के कारण शिकारी की डोर के काँटे में भोजन के लिए फँसकर प्राण गँवा देती है।

विषय-विकार का कायल हाथी है, वो बड़ा कामुक है। जंगल में एक विशाल खड्डा खोदकर शिकारी लोग उस पर लकड़ियाँ-घास डालकर ढक देते हैं। कुछ दूर एक पालतू हथिनी बाँध देते हैं। हाथी कामुक है; हथिनी को देखकर आता है और गड्डे में गिरने से बंधक बना लिया जाता है। पालतू बना लिया जाता है। इस तरह काम इन्द्री के मजे के कारण हाथी अपनी आजादी गँवा देता है। दीपक की लौ की तरफ जाकर आँख इन्द्री के मजे

के कारण पतंगा अपनी जान गँवा देता है। आग से जलने के कारण बार-बार गिरता है, पर कितना मूर्ख है कि फिर दीपक की लौ पर ही जाता है और मर जाता है।

चश्म दिल से देख तू, क्या क्या तमाशो हो रहे।  
दिल सतां क्या क्या तेरे दिल सताने के लिए।  
एक दिल लाखों तमन्ना उसपे फिर भारी हवस।  
है कहाँ दिल में जगह दिलवर के आने के लिए॥

जितनी भी इन्द्रियाँ हैं, आत्मदेव को उलझाने के लिए हैं। इन्हीं इन्द्रियों के सुख और आनन्द के लिए मनुष्य छल-कपट का सहारा लेता है। यही सब माया का मज्जा है। मनुष्य तो पाँचों इन्द्रियों का कायल है, उसकी पाँचों इन्द्रियाँ तेज हैं, वो पाँचों का मज्जा और आनन्द ही चाह रहा है। इन्हीं की तृप्ति के लिए मनुष्य जीवन भर दौड़ रहा है। कोई भी आत्मज्ञान लेने और आत्मशक्ति पाने 'मन' से अलग जाने का मार्ग नहीं ढूँढ़ रहा है। आत्मा को अपने स्वरूप का ज्ञान होने केवल मूल गुप्त 'नाम' चाहिए जिसे पाकर ही 'वह' मन-माया के फंदों से छूटेगी। आत्मा की शक्ति लेकर ही 'मन' इन्द्रियों के सुख और आनन्द की अनुभूति करवाता है।

आत्मा में कोई विकार नहीं है। शरीर ही गन्दगी और विकारों से भरा है। हरेक अंग-प्रत्यंग से गन्दगी निकल रही है। मुख से थूक, लार, खकार। नासिका से नाक, आँखों से कीचड़, कानों से मैल। बदन से पसीने-मैल की बदबू। पेट में बनी गन्दगी मल-द्वार से बाहर होती है तो मूत्र लिंगद्वार से निकलता है। मृत इंसान का शरीर सड़ने पर मरे हुए चूहे से भी अधिक बदबू देता है। इंसान के जिस्म में इतनी गन्दी बदबू है, पूरा विकार से भरा है। केवल सफाई करने से, शृंगार करने से सुधरता है, अच्छा दिखता है। पर आत्मा में कोई विकार-बदबू नहीं है; पूर्णतः पवित्र और सहज है। आत्मा धोखा नहीं जानती है, स्वाभाविक निर्मल है। सहज-निर्मल-चेतन-अनश्वर आत्मा के आनन्दमयी गुण स्वरूप के कारण ही वह माया के शरीर और मन की प्रत्येक इच्छा में सहयोगी होकर अपनी शक्ति प्रदान कर रही है। वह मन और माया को अपना ही मानने लगी है, भ्रम में है।

अनहद लूट होत घट भीतर, घट का मरम न जाना ॥

आत्मा, परम आनन्दमयी है। क्यों? परमपुरुष का अंश होने से वे ही तत्व उसमें हैं, इस आत्मा में भी हैं। सभी जीवों में आत्मा समान-रूप एक है न वह पुरुष है, न स्त्री है; फिर भी प्रत्येक जीव के शरीर-धर्म के पालन में सहयोगी है। प्रत्येक जीव के प्राणों की शक्ति है, आत्मा।

आत्मा ने सच में अपने को शरीर मान लिया, यहीं समस्या उत्पन्न हो गई। कोई भी प्राणी शरीर नहीं छोड़ना चाह रहा है। साँप कठिन योनि में है, पर वो जीना चाहता है। कीट-पतंग आदि निकृष्ट योनियाँ हैं। सब जीव अपनी-अपनी सुरक्षा, विषय और भोजन के लिए पूरी बुद्धिमत्ता से जुटे हैं। जिस भी शरीर में आत्मा है उससे बहुत प्रेम कर रही है, उसे छोड़ना नहीं चाहती, प्राण-वायु से जुड़ी है।

निज मन मुकुर सुधार, गुरु पद पंकज उर धारिये ॥

मिटै सकल अंधियार, अस्थिर घर तब पाइये ॥

ना फिर जन्में योनि, ना स्वर्ग नर्क को जाय।

सो हँसा रहित भये, अजर अमर घर पाय ॥



अनहद की धुन भवरगुफा में, अति घनघोर मचाया है।

बाजे बजे अनेक भाँति के, सुनि के मन ललचाया है ॥

..... ।

यह सब काल जाल को फन्दा, मन कल्पित ठहराया है ॥

पाँच शब्द और पाँचों मुद्रा, लोक दीप यम जाला ॥



# अनुभव सहज समाधि में

प्रकृति पार वह शब्द है, अगम अचिन्त्य अपार।

अनुभव सहज समाधि में, अज गुरु चरण अधार।।

स्वाँसा चल रही है, एक पल भी रुक नहीं रही है। सुरति भी एक पल के लिए रुकने का नाम नहीं ले रही है, वो 'मन' के संकल्पों का हल ढूँढने में लगी है। 'मन' इतना शातिर/होशियार है कि एक पल के लिए भी बुद्धि संग निरति को स्थिर नहीं होने दे रहा है। इसका वेग (चाल) भी बहुत तीव्र है। चाहे-अनचाहे आत्मा (सुरति) को काम-क्रोध आदि में शामिल होना पड़ रहा है। योग से, किसी क्रिया से 'मन' का निग्रह नहीं किया जा सकता। यदि कोई ऐसा करने की कोशिश करता है, तो बेवकूफी ही है। क्यों? क्योंकि जितनी भी क्रियायें करते हैं उनमें 'मन' ही तो चेतन है, मन ही तो कर्ता है। सब मन को चेतन करके ही उसे एकाग्र करना कह रहे हैं। 'मन' को मारकर एकाग्र करना होता है। गण, गन्धर्व, ऋषि, मुनि, देव, सन्यासी और तपसी जिन्होंने तप करके शरीर को मिट्टी बना दिया, मन को एकाग्र नहीं कर सके। फिर साधारण आदमी की क्या ताकत है। साहिब कह रहे हैं —

कितने तपसी तप कर डारे, काया डारी गारा।

गृह छोड़ भये सन्यासी, तऊ न पावत पारा।।

गण गन्धर्व ऋषि मुनि अरू देवा।

सब मिलि लाग निरञ्जन सेवा।।

मन जो-जो चाह रहा है, वही तो करवा रहा है। दिव्य पुरुषों के जीवन पर चिंतन करते हैं तो पता चलता है कि मन ने सबको नचाया। कहीं शादी करवा दी, कहीं हत्या करवा दी, कहीं अन्य बुरा काम करवा दिया। हमने उन्हें लीला या माया में शुमार कर दिया विधाता-मन निरञ्जन की ही भक्ति

और धर्म-मान्यताओं में ठगे जाते रहे।

योगेश्वरों और योगियों ने अनेक प्रकार से ध्यान किया, अनेक प्रकार के जप-तप किये, शरीर को कष्ट दिया — सुखा डाला; फिर भी यह मन वश में नहीं हुआ, पकड़ में नहीं आया। कबीर साहिब ने कहा —

मन ही सरूपी देव निरञ्जन, तोहिं रहा भरमाई ।

हे हँसा तू अमरलोक का, पड़ा काल बस आई ॥

पाँच पच्चीस तीन का पिंजड़ा, जामें तोहि राखा भरमाई ॥

पाँच वृत्तियों, पच्चीस प्रकृतियों और तीन गुणों के इस शरीर रूपी पिंजड़े में परमलोक के हँस आत्मा को भरमा कर रखा है। 'मन' से ही अज्ञान में फँसी 'आत्मा' झूठी माया को सच मानकर उसके बँधन में स्वयं बँधी है। कबीर साहिब की ज्ञान-गुदड़ी के शब्दों को भक्ति क्षेत्र में लोग गा-गा कर मग्न होते हैं। कोई भी उसके आध्यात्मिक भाव को गुनकर 'आत्मज्ञान' की ओर जाने का प्रयास नहीं कर रहा है। सहज समाधि के 'शब्द' को जानकर आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त करने के पथ पर कोई नहीं चल रहा। कबीर साहिब उसी स्वतः शब्द अनुभूति की समाधि प्राप्त करने अलख निरञ्जन के मायाजाल को 'ज्ञान गुदड़ी' शब्दों से समझा रहे हैं।

....अलख पुरुष जब किया विचारा। लख चौरासी धागा डारा ॥

पाँच तत्व से गुदड़ी बीनी। तीन गुनन से ठाढ़ी कीनी ॥

ता में जीव ब्रह्म अरू माया। समरथ ऐसा खेल बनाया ॥

सब्द की सुई सुरति के धागा। ज्ञान के टोप से सीयन लागा ॥

सीवन पाँच पच्चीसी लागी। काम क्रोध मोह मद पागी ॥

काया गुदड़ी के विस्तारा। देखो संत अगम सिंगारा ॥

चाँद सूरज दोउ पैबंद लागे। गुरु प्रताप सोवन अरू जागे ॥

अब गुदड़ी की करू हुसियारी। दाग न लगे देखु विचारी ॥

जिन गुदड़ी को कियो विचारा। तिन ही भेटो सिरजनहारा ॥

सुमति के साबुन सिरजन धोई। कुमति मैल सब डारो खाई ॥

धीरज धूनी ध्यान को आसन। सत कोपीन सहज सिंहासन ॥

युक्ति कमण्डल कर गहि लीना। प्रेम फावड़ी मुर्शिद दीना॥  
 सेली सील विवेक की माला। दया की टोपी तन धर्मशाला॥  
 मेहर मतंगा मत बैसाखी। मृगछाला मन ही की राखी॥  
 निश्चै धोती स्वाँस जनेऊ। अजपा जपै सो जानै भेऊ॥  
 रहे निरंतर सद्गुरु दाया। साधु संगति करि सब पाया॥  
 लकुटी लौ की हिरदा झोरी। क्षमा खड़ाऊँ पहिरि बहोरी॥  
 भक्ति मेखला सुरति सुमरनी। प्रेम प्याला पीवे मौनी॥  
 उदास कुबरी कलह निबारी। ममता कुत्ती को ललकारी॥  
 जगत जंजीर बाँधि जब दीन्ही। अगम अगोचर खिड़की चीन्ही॥  
 तत्व तिलक निर्भय निरबाना। बैराग त्याग विज्ञान निंधाना॥  
 गुरु गम चकमक मनसा तूला। ब्रह्मा अगिनि परगट करि मूला॥  
 संशय शोक सकल भ्रम जारा। पाँच पचीसी परगट मारा॥  
 दिल दर्पण दुविधा खोई। सो बैरागी पक्का होई॥  
 सुन्न महल में फेरा देई। अमृत रस की भिक्षा लेई॥  
 सुख दुःख मैल जगत के भावा। तिरबेनी के घाट छुड़ावा॥  
 तन मन सोधि भयो जब ज्ञाना। तब लख पायो पद निर्वाना॥  
 अष्टकंवल दल चक्कर सूझे। योगी आप आप में बूझे॥  
 इङ्गला पिङ्गला के घर जाई। सुषमन नाल रहा ठहराई॥  
 ओहं सोहं तत्त विचारा। बंकनाल का किया सम्भारा॥  
 मन को मार गगन चढ़ि जाई। मानसरोवर पैठि नहाई॥  
 छूटे कलमल मिले अलेखा। निज नैनन साहिब को देखा॥  
 अहँकार अभिमान बिडारा। घट का चौका करि उजयारा॥  
 अनहद शब्द नाम की पूजा। सद्गुरु बिन देव नहिं दूजा॥  
 चित्त कर चकमक मन्सा तूला। हित करू सम्पुट लिखिले मूला॥  
 श्रद्धा चँवर प्रीति का धूपा। नूतन नाम साहिब का रूपा॥  
 गुदड़ी पहिरे आप अलेखा। जिन यह प्रगट चलायो भेषा॥  
 सत्त कबीर बक्श जब दीन्हा। सुर नर मुनि सब गुदड़ी लीन्हा॥  
 रहै निरंतर सद्गुरु दाया। सत्संगति में सब कछु पाया॥  
 कहे कबीर सुनो धर्मदासा। ज्ञान गुदड़ी करो परकासा॥

त्रिलोकों की इस सृष्टि के अलख पुरुष (निरञ्जन) ने गहन विचार करके चौरासी-लाख योनियों के धागों में 'आत्मा' को बाँधा है। पाँच तत्वों से इन चौरासी लाख धागों की गुदड़ी रूपी शरीरों को, तीन-गुणों से युक्त कर बनाया है। परमपुरुष (साहिब) से वरदान प्राप्त कर अलख निरञ्जन ने सृष्टि-रचना का शातिराना अहँकार किया है। इस खेल में शरीर रूपी गुदड़ी में जीव, ब्रह्म और माया को बुना है। शरीरों में आत्मा को सुरति के धागे, शब्द रूपी सुई में डालकर, बुद्धि रूपी डिबिया बनाकर ज्ञान को जोड़ा है। शरीर रूपी गुदड़ी में काम-क्रोध-लोभ-मोह-अहँकार वृत्तियों को पच्चीस प्रकृतियों संग धागे में पिरोकर सिया है। सब संत इस काया-गुदड़ी के विस्तार और श्रृंगार को ध्यान में देखें-समझें। दो नेत्र रूप सूर्य और चाँद के पैबंद भी इस शरीर रूप गुदड़ी में लगे हैं।

सद्गुरु की कृपा पाकर जाग जाओ और देखो इस शरीर-गुदड़ी को 'ज्ञान-विचार' से दाग मत लगने दो। व्यर्थ मत गंवाओ। सत्संग-सुमति रूपी साबुन से इस शरीर रूपी रचना को, हृदय में क्षमा रूपी खड़ाऊँ पहनकर, लगन रूपी छड़ी से धो डालो। अटूट भक्ति से पर्वत के समान अडिग रहकर सुरति की सुमिरनी से सत्यप्रेम का प्याला पियो। इसतरह मन-रूपी काल-कलह का नाश होकर 'ममता-मोह' से छुटकारा मिलेगा। सद्गुरु जब सच्चा नाम देते हैं तो इस जगत को ही जंजीर से बाँध देते हैं। शिष्य मुक्त होकर दसम द्वार से निकलकर ग्यारहवें द्वार को पहचान जाता है। राग-त्याग-बैराग और तिलक आदि के विधानों और पाँचों तत्वों से मुक्ति मिल जाती है। सद्गुरु के मिलने से 'मन' खुद चकमक के समान मूल ब्रह्म अग्नि प्रकट करने में सहायक हो जाता है।

साहिब कबीर इस शरीर रूपी गुदड़ी को सुविचार के साबुन से धोने और कुविचारों के सब मैल को धोने समझा रहे हैं। कह रहे हैं — सहज आसन में 'धीरज' की धूनि से 'ध्यान' को सत्य के सिंहासन पर स्थिर करो। सद्गुरु, यही धीरज और ध्यान रूप 'युक्ति' कमण्डल को हाथ में लेने और 'प्रेम' रूप फावड़ी से साहिब को पहचानने का ज्ञान दे रहे हैं।

‘विवेक’ को माला बनाकर और ‘देह’ को धर्मशाला मानकर सदा ‘दया’ रूप होकर जीवों की सेवा में रहो। ‘मन’ को मृगछाला की तरह रखकर अर्थात् उस पर आसन रखकर ‘देह’ को अपनी वैशाखी बना लो। मन के जोर को खत्म कर उसे अपनी दया पर निर्भर कर दो। अजपा-जाप करने वाला ही इस ‘शब्द-समाधि’ के भेद को जानेगा। इसी तरह संशय, शोक, भ्रम और पाँच-पच्चीसी ‘तत्त्व-प्रकृतियों’ पर विजय प्राप्त कर, नष्ट किया जाता है।

अपने हृदय को दर्पण बनाकर जब सभी दुविधायें छूट जाती हैं तो शिष्य स्वतः पक्का बैरागी हो जाता है। दसमद्वार से ऊपर शून्य ‘अधर’ में स्वाँसों की सुरत-निरत ले जाकर, सद्गुरु शब्द-सुरति का अमृत मिलता है। यही आत्मनुभव की सहज समाधि है। दुनिया के सुख-दुःख की कीच को धोकर सुषुम्ना का त्रिवेणी रूपी घाट भी छूट जाता है। इस प्रकार तन और मन का सच्चा भेद-ज्ञान हो जाने पर निर्वाण-पद देखने की क्षमता मिल जाती है। अष्टदल कमल से शून्य अधर में ध्यान में आप अपने को पा लेते हैं। इङ्गला और पिङ्गला स्वाँसा सम होकर सुषुम्ना में समाकर त्रिवेणी संगम बन जाता है। इसी त्रिवेणी में स्व-ब्रह्म-तत्त्व विचार से बंकनाल में रहकर और मन की चालाकी से सतर्क रहकर शून्य में चढ़ने की शक्ति सद्गुरु देते हैं। शून्य के मानसरोवर (अधर) की गहराई में जाकर स्नान से संसार के दुःख और मैल छूट जाते हैं। अलख आत्मस्वरूप अर्थात् स्व-दर्शन होकर ‘आत्मा’ की आँखों से परमपुरुष को देखोगे। इस स्थिति में आने पर माया की चार-अवस्थाओं और छः शरीरों से पृथक होकर समस्त अहंकार (कर्मों) और दम्भ नष्ट हो जायेंगे।

ऐसे अपने शरीर रूपी घट में प्रकाश का चौक बनाकर सत्यनाम की पूजा करो। सत्य परमपुरुष के अकह ‘नाम’ के अलावा अन्य किसी देव को ध्यान में मत लाओ। ‘सोहं’ रूपी स्वाँसा को ही चन्दन, तुलसी, पुष्प जानकर चित्त से अन्य सब कुछ भुला दो। ‘श्रद्धा’ रूपी पालना और ‘प्रीत’ की धूप देकर सद्गुरु के नित्य-सत्य ‘नाम’ का ही सिमरन करो।

नाम सत्य गुरु सत्य, आप सत्य जो होय।

तीन सत्य जब एक हों, विष से अमृत होय॥

शरीर रूपी इस गुदड़ी को इसमें स्थित अलेख-अलख आत्मा ने स्वयं ही पहन रखा है। इसी प्रकट देह को आत्मा ने अपना भेष मान लिया है। इस देह-गुदड़ी के जाल से कबीर-रूपी सद्गुरु साहिब ने जब मुक्त कर दिया तो समस्त सुर, नर, मुनि भी इस देह (गुदड़ी) की चाह करने लगे। सत्-संगति में रहकर सदा सद्गुरु की दया से ही सब कुछ मिल जाता है। सत्य 'नाम' के स्वाँसों में सुमिरन का यही ज्ञान देकर, सद्गुरु, भक्तों की इस गुदड़ी रूपी देह को प्रकाशित कर देते हैं। 'सोहं', स्वाँस को कहते हैं। स्वाँसों में सुमिरन का महत्व ही ज्ञान-गुदड़ी से बताया है। स्वाँस और सुरति के बीच में ही रहस्य है।

### मन पर नियंत्रण की विधि

सहज-समाधि से 'शब्द' में समाने का भेद बताते हुए साहिब ने कहा—

धर्मदास मैं कहूँ बखानी। भाखूँ सुरति निरति उत्पानी॥  
मूल नाभिते शब्द उचारा। फूटी नाल भई दुई धारा॥  
स्वाती पवन अधरते आई। सुरति निरति संगति मिलि धाई॥  
सुरति निरति यों उत्पत्ति होई। ताको भेद लखे जन कोई॥  
सुरति निरति की सुधि ना पाई। सो नर पशु पक्षी है भाई॥  
मूरख से मोहरति ह्वै गयऊ। शब्द बाँधि जिन सुरति न गहेऊ॥  
तेहि शब्द का करो विचारा। सुरति निरति ले शब्द संभारा॥  
शब्द सुरति निरति यक ठौरा। कहै पुरुष तहाँ मोहि निहोरा॥  
अगम तत्व गहि मथै शरीरा। निरति नाम भये सत्य कबीरा॥  
निरति धरै शब्द की आशा। सुरति नाम तुम गहु धर्मदासा॥  
सुरति निरति से बाँधे नेहा। पावै नाम होय हँस विदेहा॥  
दहिने घाट चन्द्र का बासा। बांये सूर्य करे प्रकाशा॥  
यही दोउ स्वर साधो भाई। चन्द्र द्वार होय निकसो आई॥  
अगम पंथ दहिने स्वर करहु। सुरति संयोग नाल चित धरहु॥

चन्द्र द्वार होय आओ जाई । शब्द सुरति में रहो समाई ॥  
 स्वर दाहिने सुरति चढ़ाओ । तबही डोर शब्द की पाओ ॥  
 शब्द डोर दहिने दिशि जाई । धर्मदास तुम गहो बनाई ॥  
 पाओ डोर शब्द को भाई । अगम पथ चढ़ि बैठो जाई ॥

स्वाति पवन, सुरति और निरति से जीव की प्राण शक्ति का भेद प्रकट करते हुए ज्ञान-गुदड़ी को व्यवहारिक जीवन में उतारने का ज्ञान दे रहे हैं, साहिब । आकाशीय पवन से नासिका द्वारा शरीर में आने वाली प्राण-वायु 'स्वाति पवन' कहलाती है । नासिका के दाहिने भाग को 'चन्द्र' और बांये भाग को 'सूर्य' (इङ्गला-पिङ्गला) बताते हुए इन्हें साधने के लिए कहा । अधर से आने वाली स्वाति-पवन ही नाभि केन्द्र तक जाकर शरीर में दस प्राण-वायु के रूप में विभाजित होकर निरति कहलाती है । नाभि से उठकर ऊपर नासिका से निकलने दो धारा में बँटती है । इसी प्रकार सुरति-निरति की उत्पत्ति होकर, 'सुरति' शरीर को 'मन' की इच्छानुसार हरेक कर्म में शक्ति के लिए दे रही है । इस भेद को मनुष्य नहीं जानता, किसी को सुरति-निरति की सुध नहीं है । यही कारण है कि मनुष्य भी पशु-पक्षी की तरह केवल स्वाँसा ले रहा है । जिस 'स्वाति पवन' से शरीर की प्राण वायु चलायमान है वही, सुरति-निरति की संगति से मिलकर दौड़ रही है । मनुष्य, मात्र प्राण-वायु से मोह करके उसके साथ रतिक्रिया समान जुड़कर जीवन जी रहा है । इसी कारण कोई सुरति-शब्द ग्रहण नहीं कर पा रहा है; सभी जीव केवल सुरति-निरति के रूप में नाभि से निकलने वाली दो-धारा के ( द्वैत ) शब्द में उलझे हैं । इन द्वैत शब्दों को बाँध कर 'सार-शब्द' सुरति से ग्रहण करने का विचार ही सद्गुरु-ज्ञान है । सुरति-निरति शरीर में मिलकर बाहर भटका रही है; इन्हीं को एक सम करके सुरति को सद्गुरु शब्द से जोड़कर सम्भालना है । ऐसा करने पर ही परमपुरुष अर्थात् आत्मस्वरूप का अनुभव होगा । शरीर में नाभि स्थान से 10 वायु रूपों में बँटकर निर्मित हुई 'निरति' भी सद्गुरु 'नाम' की 'सुरति' पाने की आशा में है । अतः सुरति-निरति का भेद जानकर इनसे प्रीति बाँधी और सद्गुरु की सत्य 'सुरति'

(नाम) से जुड़कर विदेह हँस हो जाओ। यह 'सत्य' शब्द डोर नासिका के दाहिने-स्वर में जाती है। इस 'शब्द' वाहिनी डोर को ध्यान से ग्रहण कर अपने अगम पथ पर चढ़ो। यही सहज समाधि है जिसका अनुभव सोते-जागते सहज जीवन जीने से होता है।

'मन' इच्छायें कर रहा है, बुद्धि फैसला कर रही है और हमारा अहंकार क्रिया कर रहा है। इनके बीच में आत्मदेव ढक गया है। इसलिये जीवन-कर्म में आत्मा का बोध नहीं हो रहा है। 'मैं' में मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार हैं। इस 'मैं' को मारना चिंतन को रोकना है — संकल्प को रोकना है। चार प्रक्रियायें इच्छा, फैसला, सामग्री जुटाना और क्रियान्वयन मनुष्य स्वाभाविक रूप से कर रहा है। इच्छाओं का स्वाभाविक उद्गम हो रहा है इस 'मैं' में इच्छाओं को रोकना ही मैं को मारना है। इसमें निश्चय हो रहा है उसे रोकना है। चिंतन हो रहा है चाहे अनचाहे, उसे रोकना है। यही 'मन' पर नियंत्रण के उपाय हैं। 'मन' के कारण ही आत्म-बोध नहीं हो रहा है। जब भी अपने अन्दर झाँकेंगे तो यही दिखेंगे। मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार ही अंतःकरण है। कर्मेन्द्रियाँ, ज्ञानेन्द्रियाँ और अंतःकरण इन्हीं 14 इन्द्रियों के समस्त नश्वर धर्म-कर्मों में 'आत्मा' लिप्त होकर शरीरों के आवागमन में फँसी है।

सब कामों की प्रेरणा देने वाला मन है। हरेक क्रिया जीवन में 'मन' की है। कोई भी इस बात को नहीं समझ पा रहा है, मन सबको सतत प्रेरित किये जा रहा है। बस, सभी काम किये जा रहे हैं, शुभ या अशुभ। एक क्षण के लिए भी मन शांत नहीं हो रहा है। यदि एक पल के लिए भी मन स्थिर हो जाए तो आत्म-साक्षात्कार हो जायेगा। साहिब कह रहे हैं —

तन थिर मन थिर वचन थिर, सुरति निरति थिर होय।

कहे कबीर वा पल को, कल्प न पावै कोय॥

वर्तमान में अध्यात्म क्षेत्र में बिना कोई आत्म-अनुभव के पारिवारिक उत्तराधिकार, धनबल और बाहुबल के आधार से गुरु गद्दी पर बैठकर संत और सद्गुरु बन रहे हैं। संतमत में कोई भी उक्तानुसार संत या सद्गुरु के



पद से विभूषित होने का अधिकारी नहीं है। कलियुग के आध्यात्मिक भक्तिकाल में केवल 32 संत-सद्गुरु उत्पन्न हुए जो सहजता सरलता से ईमान की कमाई से भ्रमण करते हुए 'सत्य' धर्म चेतना जगाते रहे। अब धर्म क्षेत्र में दौलत, शौहरत और औरत (अय्याशी) का प्रवेश है। मैं अपने सत्संगी शिष्यों से कहता हूँ कि आपको विचार आता होगा कि सत्यलोक कैसा है, हँस कैसे हैं। सच्चाई यह है कि आप सब सत्यलोक को जानते हैं, वो घर ही आपका है। आप परमपुरुष को जानते हो। निरञ्जन (कालपुरुष) ने इस सृष्टि को सत्यलोक की नकल पर बनाया है। अन्तर यही है कि सत्यलोक में भौतिक-तत्त्व नहीं है, वहाँ हँस आनंद के सागर में विलीन होकर आनंदस्वरूप है। निरञ्जन की इस सृष्टि के मृत्युलोक में रहकर सब जीव आनंद ढूँढ़ रहे हैं। वहाँ अविरल आनंद है, यहाँ इन्द्रिय-भोग का आनंद है। सत्यलोक स्वतः रमणीक-सौन्दर्यमय है, यहाँ सजाया गया है, पर पूर्ण सौंदर्य और रमणीकता बन नहीं पाई। आत्मा को भ्रमित करने के लिए महाअँधकार के नीचे सूर्य, चन्द्र, तारामण्डलों से प्रकाश युक्त आकाश गंगाये बनाने में निरञ्जन की महाशक्ति लगी है। 'हँस' जो सत्यपुरुष के अंश हैं, निरञ्जन-काल की इस सृष्टि की आत्मा हैं जिन्हें 84 लाख योनियों में 'जीव' बनाया गया है। यही भ्रम का कारण और अँधकारमय महाशून्य के नीचे आकाशीय तत्वों का अज्ञान है। सबको इस भौतिक-सृष्टि में कर्मानुकूल फल मिलता है, हर जन्म में मिलता है, हर तत्त्व को मिलता है। जब आत्मा सद्गुरु शरण में सत्यलोक के अपने निज हँसस्वरूप का बोध पाती है तब अनुभव होता है कि 'मन' ने उसे किस भ्रम में उलझाया हुआ है। जब यही जीवात्मा मोक्ष प्राप्त कर 'हँस' रूप सत्यलोक में प्रवेश करती है तो परमपुरुष को देखकर आश्चर्य नहीं करती। वहाँ सब उसे अपना ही लगता है। जैसे जगत में मनुष्य जब जाग्रत अवस्था से सोने के समय स्वप्न अवस्था में जाता है तो स्वप्न में जो कुछ भी घटित होता है सब वास्तविक लगता है। ऐसे आत्मा जब सत्यलोक में पहुँचती है वहाँ लगता है कि वह झूठे स्वप्न-संसार से वापस आकर अपने निजघर में है। ठीक वैसे ही जैसे हम

रात को निद्रावस्था में स्वप्नों के झूठे अनुभवों से निकलकर प्रातः उठने पर अपने घर में अनुभव करते हैं। आत्मा का यही सहज अनुभव, शिष्य को सद्गुरु से 'नाम' प्राप्त होने पर 'मन' के भ्रम समझ में आने से होता है।

सृष्टि का एक ही अलखपुरुष है काल निरञ्जन (मन) और एक ही नारी है 'आद्यशक्ति'। संसार का एक ही विधान है 'कर्म' और 'कर्मफल'। काल-निरञ्जन के ही दस-अवतार रूप हैं। द्वापर में राजा जालंधर की पत्नि वृन्दा के पतिव्रत धर्म के कारण जालंधर को मारना सम्भव नहीं था। श्रीविष्णु ने जालंधर का रूप रखकर वृन्दा का सतीत्व नष्ट किया तब श्रीकृष्ण ने जालंधर को मारा। संसार-सृष्टि का यही कर्म-विधान है। सत्यलोक स्वयं सत्यपुरुष का ही स्वरूप है, वहाँ कर्म और कर्मफल नहीं हैं, कोई अवतार और तत्व नहीं हैं, रचना और विनाश नहीं है। इस कारण सत्यलोक में समाया कोई विरला संत ही 'सत्य' का अनुभव कराने में समर्थ है। मनुष्य किसी भी तरह स्वयं की योग-साधना, धर्म-ग्रन्थों, वेद-शास्त्रों के शब्द ज्ञान या नामों से उस निःअक्षर-अकह 'सत्य' को नहीं जान सकता।

साहिब ने 'मन' से छूटने और मोक्ष प्राप्त करने सद्गुरु शरण में जाना बताया है। सद्गुरु का गुप्त विदेह 'नाम' पाकर सुमिरन और कृपा से ही सद्गुरु आत्मा का साक्षात्कार कराता है। यही गुरु-शब्द प्रकट होकर दीन-हीन को भी मिल जाता है। सिमरन का वैज्ञानिक महत्व है। सिमरन से आत्मा सद्गुरु के पास होती है क्योंकि सद्गुरु का चिंतन शिष्य को सद्गुरु का तद्रूप बनाता है। आदमी सतत् जिसका चिंतन करता है, उसका तद्रूप हो जाता है।

अब मैं दुनिया वालों से जो कहने जा रहा हूँ, उससे बड़ा विवाद उत्पन्न होगा, बहस होगी, लोग मुझे बड़ा घमण्डी अभिमानी कहेंगे। मेरा एक वाक्य पहले ही लोगों को ऐसा सोचने विवशकर चुका है, वो है — 'जो वस्तु मेरे पास है, ब्रह्माण्ड में कहीं नहीं है।' यह बात मैंने बड़े सहज-सरल भाव से कही, घमण्ड से नहीं। क्योंकि सत्यपुरुष में समाया कोई एक ही

अपने स्वयं के अनुभव से इशारों में बता सकता है। वो अकह 'नाम' वेद-शास्त्र और धर्मग्रंथों में नहीं है। भाषा-अक्षरों में लिखे गए परमात्मा के सब नाम आकाश में समाय अलख-निरञ्जन के नश्वर 'नाम' है। 'आकाश' के प्रकाश रूप शून्य में ही समस्त सृष्टि के ब्रह्माण्ड हैं जो नश्वर तत्वों से बने हैं। आकाश स्वयं पांचवाँ-तत्व है जो नश्वर है, तो उसमें समाया परमात्मा कैसे अनश्वर होगा! अनश्वर तो केवल एक परमपुरुष लोक है जो तीन-लोक सृष्टि से परे है। शून्य सृष्टि के लोकों और अंधकारमय महाशून्य से परे सत्यलोक है। इसलिये सत्यलोक के सत्यपुरुष का 'नाम' नश्वर ब्रह्माण्डों में कहीं नहीं है, 'अकह-नाम' तो स्वयं अक्षय परमलोक है। उस सत्य को बोलकर और योग-मुद्राओं के 'नाम' जाप से प्राप्त नहीं किया जा सकता।

अब मैं जो कहने जा रहा हूँ वो यह कि — “मैं इस ब्रह्माण्ड में खुद को किसी से बड़ा नहीं समझता। और ... इस ब्रह्माण्ड में कोई मुझसे बड़ा नहीं है।” मैं यह भी घमण्ड से या कोई विवाद का विषय बनने के लिए नहीं कह रहा हूँ। इस वाक्य को भी पूर्व की भाँति सहज-सरल भाव से अकह 'नाम' की भाँति ही समझना होगा। वाक्य का पहला अंश 'मैं इस ब्रह्माण्ड में खुद को किसी से बड़ा नहीं समझता' ..... हम सब मनुष्यों में और समस्त जीव-योनियों में एक ही 'आत्मा' का वास समान रूप से है। किसी भी शरीर में 'आत्मा' ही जीव रूप में है। आत्मवतन् सर्वभूतेषु।

यही एक 'सत्य' समस्त धर्मशास्त्र, वेद-पुराण कह रहे हैं। यही सब संत कह रहे हैं कि कालनिरञ्जन और सब जीवों में एक ही परमपुरुष अंश चेतन रूप 'आत्मा' का वास है। .... तो एक शरीर-रूप 'मैं' भी इस ब्रह्माण्ड में सब के समान हूँ, किसी से बड़ा नहीं हूँ। फिर वाक्य का दूसरा अंश — 'इस ब्रह्माण्ड में कोई मुझसे बड़ा नहीं है।' क्योंकि मैं आत्मा का जलवा जानता हूँ। इस दुनिया के लोग शरीर पर पहने हुए कपड़ों की सज्जा, शरीर की बनावट, सुन्दरता, गोरापन-कालेपन रंगों, माँस-बलिष्ठता की इज्जत कर रहे हैं। धन-सम्पदा से मान-सम्मान दे रहे हैं। मैं जात-पात,

बलवान, कमजोर, ऊँच-नीच, पद, धन, सुन्दर-कुरूप के आधार पर मनुष्यों को नहीं देखता। सब समान रूप से 'स्वयं' को जानने अर्थात् अपने आत्मस्वरूप को पाकर परम 'सत्य' को प्राप्त करने के अधिकारी हैं। सब उस परमपुरुष में समाने अर्थात् 'आत्मा' के निजघर का मोक्ष प्राप्त करने के अधिकारी है। सद्गुरु शरण में आने पर और गुप्त अकह 'नाम' पाकर एक परमपुरुष की भक्ति करने के सभी अधिकारी हैं। जैसे एक पी.एच.डी. अगर कहे कि पहले या बाद में किए पी.एच.डी. से बड़ा हूँ तो व्यवहार संगत नहीं। एक बून्द समुद्र में मिली अगर कहे कि पहली मिली बून्द से विशेष हूँ तो यह भी तर्क संगत नहीं। इसी तरह मैं उस अनित्य सत्य को जानता हूँ जिसके बाद न ही कोई गया न ही जाएगा। यही मेरा तर्क एवं निष्कर्ष है।

त्रिकाल में जो भी आए और बारम्बार पाप-पुण्यों के कर्मजाल में कर्मफल भोगने विवश हुए उन्हें मैंने अपने से बड़ा नहीं माना। क्यों? क्योंकि मैंने उस एक को पाया और उसमें समाया जो अनश्वर है, जो कभी जनम-मरण के चक्र में अवतार नहीं लेता। साहिब ने भी यही कहा—

कबीर एकौ जानिया, तो जाना सब जान।

कबीर एक न जानिया, तो सब जाना जान अजान॥

संसार में सभी, सृष्टि रचने वाले किसी अलख को भगवान, खुदा, गॉड, ईश्वर, परमात्मा मानकर उनके पुत्र, पैगम्बर, अवतारों उनकी चीजों-स्थानों-बलिदानों-जीवन के घटनाक्रमों, उनके परिवारजनों, चरित्रों आदि की भक्ति, साधना, पूजा, ध्यान, स्नान व्रत, तीर्थ आदि करके मुक्ति की अभिलाषा कर रहे हैं। 'मन' के ही रूपों और अनेकों भगवान-देवी-देवताओं की आराधना भक्ति इच्छाओं की पूर्ति, शरीर के भौतिक सुखों के लिये सब कर रहे हैं। परेशानी-दुःखों से मुक्ति की कामना और भौतिक सुखों को पाने का धर्म सब 'गुरु' संत-महात्मा बनकर सिखा रहे हैं। मैं इन सब धर्म-कर्म-अनुष्ठानों-साधनाओं-योग से परे केवल 'आत्मा' के ज्ञान

अर्थात् अध्यात्म की शक्ति के एक 'नाम' की सद्गुरु-भक्ति पर निर्भरता का आग्रही हूँ। इसी कारण कह रहा हूँ। 'इस ब्रह्माण्ड में कोई मुझसे बड़ा नहीं है।'

गण-गन्धर्व ऋषि मुनि अरू देवा ।  
 सब मिल करें निरञ्जन सेवा ॥  
 पीर पैगम्बर कुतुब औलिया ।  
 काल निरञ्जन सबको दलिया ॥

सत्यलोक में स्वर्गों जैसी श्रेणियाँ नहीं हैं। उत्तम-मध्यम-कनिष्ठ कर्मफल के मुक्ति स्थान नहीं हैं, नर्क नहीं हैं, जन्नत की अप्सरायें और मदिरा जैसे तुच्छ सुख सत्यलोक में नहीं हैं। काल निरञ्जन स्वयं तो तीन-लोकों के सर्वोच्च स्थान पर है, किन्तु आत्माओं को एक निश्चित अवधि के लिए श्रेणीवार स्वर्गों और नरक का विधान है। त्रिकाल में जितने भी सिद्ध-साधक-तपस्वी-योगी-मुनि-ऋषि आदि हुए सबने तीन-लोक तक की बात कही। निराकार निरञ्जन तक की बात कही। प्रथम बार कबीर साहिब ने दुनिया को समझाया कि ये तीन-लोक कालपुरुष के अधीन हैं। यहाँ हर चीज़ 'समय' (काल) के अधीन है और एक अवधि बाद हर चीज़ का नाश हो जाता है।

अमरलोक में आत्मा 'हँस' बनाकर सद्गुरु द्वारा कर्मफलों से पूर्णतः मुक्त कर ले जाई जाती है। अमरलोक में 'आत्मा' जो परमपुरुष की ही अंश है उसी में समाकर पूर्णतः को प्राप्त हो जाती है। निरञ्जन की सृष्टि में आत्मा जन्म-जन्मांतरों में कभी भी अपने निज-स्वरूप को प्राप्त नहीं होती। इसीलिए गण-गन्धर्व-ऋषि-मुनि-देवों और पैगम्बरों का शरीर पाकर भी आत्मा निरञ्जन की व्यवस्था के अधीन असन्तुष्ट ही रहती है। सत्यलोक पाने के बाद आत्मा को निराकार निरञ्जन के लोकों और अवतारों की कोई स्मृति शेष नहीं रहती। सद्गुरु तीन-लोकों की निरञ्जन व्यवस्था के देवों-भगवानों से ध्यान हटाकर परमपुरुष के गुप्त 'नाम' से जोड़ते हैं। उसी सत्यनाम को सद्गुरु अपनी सुरति से शिष्य को देकर सुमिरण हेतु देते हैं। इसतरह 'सुरति-योग' से भक्त मन

पर नियंत्रण कर सहज ही आत्मनुभव प्राप्त कर लेता है। साहिब वाणी है—

मारग दोय तोहि कहूँ ज्ञाना। एक बँधन एक मोक्ष बखाना॥  
 जो स्वासा संग करे पयाना। पाँच तत्व में जाय समाना॥  
 फिर फिर आवै फिर फिर जावै। बहुरि जग में नाम धरावै॥  
 अधर तत्व में शब्द निवासा। ताहि माहि जिव करै जो बासा॥  
 सार शब्द में रहे समाई। अभय द्वार होइ आवै जाई॥  
 वहाँ न लागै काल कसाई। द्वीप अधर में बैठे जाई॥  
 गुप्त भेद काहू बिरलै पावा। तुमको धर्मनि प्रकट सुनावा॥



आत्म ज्ञान बिना सब सूना। का मथुरा का कासी॥  
 कहत कबीर सुनो भाई साधो। सहज मिले अविनासी॥  
 उतपित परलय सिरजन हारा। मेरा भेद निरंजन से पारा॥  
 तासे जगत न काहू माना। तातें तोहि कहों मैं ज्ञाना॥  
 जो कोई मानै कहा हमारा। सो हंसा निज होय हमारा॥  
 अमर करों फिर मरन न होई। ताका खूँट न पकड़ै कोई॥  
 फिर के नहीं जन्मे जग माहीं। काल-अकाल ताहि दुख नहीं॥  
 अंकुरी जीव जु होय हमारा। भवसागर तें होथ नयारा॥

# भक्ति भाव अन्तर चले

---

भक्ति भाव अन्तर चले, बाहर होत सो कर्म।  
भक्ति भेष भूषण नहीं, भेष चिन्ह जग भर्म॥  
भक्ति तदन्तर प्रेम है, बाहर से क्या काम।  
रोम रोम भीना रहे, निशिदिन आठो याम॥

भक्ति-भाव अपने अन्तर की शक्ति 'आत्मा' का सरूप है, अध्यात्म की लगन है। मैं अपने पिता की लगन और सच्चाई के सिद्धान्त पर गरीबी से समझौते के साथ भजन-प्रार्थना से प्रभावित रहा। मैं बहुत छोटी आयु में ही पिता की धोती पकड़ कर उनका भजन सुनता। चार वर्ष की आयु में ही मैं पिता जैसा भजन जाप करने अपने गाँव गोदरमऊ (भोपाल) की सूनी जगह में जाकर बैठता। मुझे बचपन से ही संसार स्वप्नवत लगता था। जब पिता जी परिवार को लेकर गोदरमऊ गाँव से भोपाल के बैरागढ़ में रहने आए तब मेरी आयु 8 वर्ष थी। भोपाल एक छोटा नगर और बैरागढ़ एक शरणार्थी ग्राम था। मैं अपने भाई-बहनों में सबसे अधिक स्वस्थ देह का हृष्ट-पुष्ट बालक था। गरीब परिवार के भरण-पोषण के लिए पिता मुझे भी दूध खरीद कर बेचने भेजते थे। मैं सबेरे पाँच-बजे से 10 मील दूर तक जाकर दूध खरीद कर लाता, फिर बेचने के बाद जो बचता उसका मक्खन और दही बनाते। इससे रोज मुझे दूध भी पीने मिल जाता जिससे शरीर ताकतवर बनता चला गया। स्कूल भी नियमित रूप से जाता, पढ़ने की भी लगन थी। इसतरह बहुत छोटी उम्र से पिता का सहयोग परिवार के पोषण में करता रहा। भाई-बहनों की जिम्मेदारी अपने ऊपर ली क्योंकि पिताजी बीमार हो गए उनका देहांत हो गया। मुझसे बड़ा भाई खराब संगत में रहकर बिगड़ गया था कोई जिम्मेदारी नहीं निभाता था।

सन् 1968 में मैंने 17-18 वर्ष की आयु में भारतीय सेना में नौकरी कर

ली। सेना में बड़े कठिन कामों की जिम्मेदारी आगे बढ़ कर लेता था। कभी माँसाहारी नहीं रहा। मैं बाल ब्रह्मचारी हूँ। चार वर्ष की आयु से पिता जी का जाप-भजन सीखा था जो सेना की सेवा में भी जारी था। मुझे 'नाम' सिमरन और आत्मा में रहने की लगन थी। मैं प्रकृति से कविता लेखक और अच्छा शिक्षक था। सेना में ही एक साथी रविशंकर ने कहा मधु तुमको एक गुरुदेव से मिलवाता हूँ, वह तुम्हें ब्रह्माण्डों की यात्रा कराने में समर्थ हैं। मैं उस साथी के साथ, उत्तरप्रदेश के गौण्डा जिले में तहसील तरबगंज के ग्राम हवेलिया (चंदापुर) स्वामी गिरधरानंद जी परमहंस की कुटिया में गया। वहीं छोटा-सा आश्रम था जिसमें स्वामी जी एक खटिया पर दरी और नीचे जमीन पर फट्टा-चटाई बिछाकर रहते थे। आश्रम में गृहस्थी का केवल एक मटका, एक थाली-लोटा और एक पतीली (भगोनी) थे। मैंने स्वामी जी को निहारा और उनसे ही दीक्षा ग्रहण की। मेरे गुरुदेव 'सत्य' भक्ति में लीन थे।

सेना की नौकरी में जब भी छुट्टी मिलती मैं घर भोपाल नहीं आकर गुरुदेव की सेवा में ही रहता। पहले पूरा वेतन माँ और भाई-बहनों के पोषण हेतु भेज देता था। गुरुदेव से दीक्षा लेने के बाद जब भी छुट्टी आता कुछ वेतन की राशि लाता और आश्रम में भोजन आदि की व्यवस्था में लगाता। गुरुदेव के पास पहले से जो सेवादार था कुछ कर नहीं पाता था। गुरुदेव का सिद्धान्त था कि जो भी साधु आते सत्संगी लोग आते उन्हें भोजन कराते थे। दाल, बाटी, चटनी का भोजन पत्तलों पर खिलाया जाता। मैं जब तक छुट्टी में गुरुदेव की सेवा में रहता तो भोजन बनाता और सब आगन्तुकों, सत्संगियों को भोजन बनाकर खिलाता था। मेरे हाथ का बना भोजन सभी को बहुत स्वादिष्ट लगता था। मैं गुरुदेव के कपड़े धोकर उन्हें स्नान कराता और हाथ-पैरों की मालिश कर देता। जब तक मैं वहाँ रहता गुरुदेव को प्रसन्न रखता और सत्संगियों को भी भोजन बनाकर खिलाता। गुरुदेव कहते मधु तुम नाम से ही नहीं वास्तव में 'मधु' हो।

मेरे गुरुदेव ने सब सेवादारों और सत्संगियों से कहा तुम सब मधु से



सत्संग-प्रवचन सुनो। मुझसे सत्संग में प्रवचन कराने के साथ ही गुरुदेव ने सत्संगियों को मेरे चरण स्पर्श करने, और बन्दगी करने को कहा। इससे पुराने और मुझसे बड़े गुरुभाई सोचते यह तो छोटा है और गुरुदेव इसके पैर छूने कहते हैं। गुरुदेव कठोरता से कहते इसकी ही बन्दगी करो और कृपा माँगो। गुरुदेव ने मुझे ही उनका उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। मैं बड़े आत्म-विश्वास से बात करता और सत्यलोक, परमपुरुष और निरञ्जन का भेद पूरे अनुभव से बताता। गुरुदेव ने मुझे अमरलोक तक की यात्रायें कराई थीं, परमपुरुष का साक्षात्कार कराया था।

मैं सेना की सेवा में रहकर भी आत्मलीन रहता था। मैंने अन्न खाना छोड़ दिया, सोचा जब मैं 'आत्मा' ही हूँ तो बाहरी भोजन की क्या आवश्यकता। केवल पानी लेता। फिर सोचा पानी में तो सभी तत्व हैं, जिनसे शरीर को भोजन की पूर्ति होती है तो, मैंने पानी-पीना भी छोड़ दिया। शरीर की और ध्यान देना उसकी सफाई पर ध्यान देना छोड़ दिया। मैं विशेष चैतन्य रहने लगा। प्रज्ञा में रहने लगा। केवल वायु पर निर्भर हो गया। मेरी स्थिति से मेरी यूनिट के सब लोग वाकिफ थे। मुझे सेना में भोजन-सामग्री के स्टोर में ड्यूटी पर लगा दिया। मैं सेना के लोगों को भी प्रवचन देता था, भिन्न-भिन्न पंथों को मानने वाले ही सेना में होते हैं। सब लोगों को मोक्ष-भक्ति और सत्यलोक की जानकारी अच्छी तो लगती पर सेना के खान-पान के कारण रूचि कम ही लोग लेते थे। मैंने वायु को बाधक मानकर 'आत्मा' को वायु से भी मुक्त रखने स्वाँस पर नियंत्रण किया। अधर-ध्यान में ही सुरति को बनाये रखता। शरीर में रहकर आत्म-धर्म का पालन करना बड़ा कठिन है। मैं शीश से सवा हाथ ऊपर रहता था, एक पल भी नहीं सोता था। सोना-जागना तो मन की वृत्ति है। तब मैं नहीं जानता था, मेरी माँ की शक्ल क्या है। मैं नहीं जानता था मेरे कितने भाई हैं। मुझे सुबह-शाम का भी मालूम नहीं था। मैं 'मन' को सोचने का समय ही नहीं देता था। यह मेरा घमण्ड नहीं है, अपितु मैं 'मन' का मास्टर हूँ। सेना के साथियों ने एक दिन कहा — तुम अपने शरीर का भी ध्यान नहीं

रखते, देखों पैरों पर कितना मैल चढ़ गया है। मैंने पैर हाथ में लेकर देखा तो सचमुच बहुत मैल चढ़ गया था। मैं शरीर बनकर और शरीर का आश्रित रहकर नहीं रहा। शरीर को अपना घोड़ा मानकर उस पर सवारी करता हूँ।

बिना भोजन, पानी, वायु का उपयोग किये मैं दो वर्ष लगातार रहा। एक दिन स्वयं आद्यशक्ति (माया) आकर मेरे सामने खड़ी हो गई। माया बोली तुम संसार के परिचालन की प्रकृति तत्वों में बाधक बन रहे हो। ... तुम भोजन, पानी, वायु तत्वों पर नियंत्रण कर बाँध रहे हो इससे सृष्टि संचालन में बाधा उत्पन्न हो रही है। ... या तो तुम शरीर की आवश्यकताओं को पूरा करो अथवा शरीर छोड़ दो। ... यदि तुम ऐसा नहीं करोगे तो मैं तुम्हें मार डालूँगी। तुमसे पहले कभी भी किसी ने ऐसा तप नहीं किया, केवल इच्छापूर्ति और मनोकामनाओं को पूरा करने या स्वर्ग पाने की घोर तपस्या-भक्ति सबने की है। मेरी इन अनुभव की बातों पर दुनिया के लोग विश्वास नहीं करेंगे। साहिब पर भी इसीलिये तो विश्वास नहीं किया था। आकाशीय अवतारों की कथाओं से परे संसार के लोग इस प्रकार 'सत्य' के अनुभवी पर विश्वास नहीं करते। एक दिन सेना का एक साथी हर्षद कुमार राजपूत रोटी खा रहा था। मैंने उससे कहा यह रोटी तुम नहीं खा रहे हो, तो वह बड़ा ठहाका मारकर हंसा। उसने सोचा यह (मैं) तो पागल हो चुका है, बहकी-बहकी बात कर रहा है। मन-माया के चमत्कारों की ही दुनिया कायल है। मैंने विचार किया, अरे! गहराई में दुनिया वालों से बात नहीं करनी है।

साहिब ने ही निरञ्जन को वचन दिया है कि उसकी सृष्टि में व्यवधान नहीं डालेंगे। जो जीव सद्गुरु शरण में रहेंगे उन्हीं को सत्यलोक ले जावेंगे; निरञ्जन के भक्तों को विवश नहीं करेंगे।

....मेरे गुरुदेव ने उनके देहावसान कर सत्यलोक जाने के 20 वर्ष पूर्व ही मुझे 'नामदान' देने का अधिकारी बना दिया। मैंने 1970 में सेना में सबसे पहले नीर सिंह राठौर को 'नाम' दीक्षा देकर शिष्य बनाया। मैंने नीरसिंह से कहा कि इस दुनिया में सबसे बड़ा पंथ अगर कोई है तो वो तुम्हारा पंथ है। नीरसिंह मेरी बात सुनकर मुस्कराया और बोला, यह आप

क्या कह रहे हैं, गुरुदेव! आपका न तो कोई पंथ है, न कोई संगत है, मैं पहला व्यक्ति हूँ, जिसने आपको गुरु धारण कर नामदीक्षा प्राप्त की है। न तो आपका कोई पंथ है, न ही आपके भक्ति-मार्ग को कोई जानता है। मैं आपका इकलौता सत्संगी हूँ और आप कह रहे हैं कि दुनिया का सबसे बड़ा पंथ मेरा है। मैंने कहा — ‘नीर सिंह सत्य-भक्ति भाव अपने अन्दर रखो और देखते चलो, साहिब तुम्हें खुद ही हमारी कही हुई बात पर भरोसा करवा देंगे। जो वस्तु मैंने तुम्हें दी है, वो वस्तु ब्रह्माण्ड में कहीं नहीं है।’

धीरे-धीरे सेना में ही मेरे अनेक ‘नामी’ शिष्य हो गए। मैंने सेना के अपने शिष्यों और मुझमें कभी भी कर्तव्यों के प्रति उदासीनता नहीं आने दी। मैंने कभी अपने गुरु होने का दिखावा सेना के मेरे अधिकारियों के आदेश का पालन करने में नहीं आने दिया। मैं सूबेदार पद से सेवानिवृत्त हुआ। आज भी सेना के अनेक पदाधिकारी और फौजी मेरे शिष्य हैं। इंजीनियर, कर्नल, डाक्टर, वकील, जज, धनवान, गरीब सभी वर्ण-जातियों के अब तक 7 लाख शिष्यों में एक ही भक्ति-भाव दिखेगा जो आन्तरिक है कोई बाहरी दिखावा और आडम्बर नहीं।

सेना में रहते हुए मेरे साथ रहे, मेरे शिष्य शिवदास ने बहुत निर्धन होते हुए भी, राँझड़ी (जम्मू) की उसकी खेती की जमीन आश्रम बनाने को दी। मेरा पहला छोटा आश्रम राँझड़ी में बना जो आज सत्संग सेवादारों के सहयोग से एक बड़ा भव्य आश्रम है। दूसरा बड़ा आश्रम मेरे गुरुदेव की कुटिया के स्थान पर उत्तरप्रदेश के गौण्डा जिले में हवेलिया का है। मेरे गुरुदेव स्वामी गिरधरानंद परमहंस का कहना था मधु यह भक्ति कठिन है। तुम्हें मुक्ति की आकाँक्षा लोगों में उत्पन्न करना है। तुम्हें स्वयं दुनिया वालों के पास सत्य-मार्ग सत्संग करके भक्ति-भाव जगाना पड़ेगा। ‘नाम’ लेने के बाद भी कठिनाइयों और काल के भ्रमों में फँसे होने के कारण सब-लोग तुम्हारे पास नहीं आ सकेंगे, निरञ्जन उन्हें खींचेगा। मधु तुम खुद अधिक से अधिक आश्रम देश में बनाकर शिष्यों को दर्शन देने और सत्संग देने

जाना। मैं अपने गुरुदेव के शब्द पालन में ही रात-दिन भ्रमण करके कठिन परिश्रम से प्रदेशों में स्थान-स्थान पर सत्संग कर आश्रम बनवा रहा हूँ। 212 आश्रम अब तक बन चुके हैं। 30 दिनों में इतने आश्रमों में माह में एक दिन सत्संग करने और नए स्थानों पर जाना, जरा सोचें कितना कठिन है। किसी भी शरीर के लिए असाध्य है, मैं शरीर बनकर नहीं जिया। लगन मेरे गुरुदेव से मुझे मिली, उनके एक हाथ की तीन ऊँगलियाँ कट गई थीं। उनका शब्द था मधु कभी आराम से नहीं बैठना, चारों तरफ पाखण्डियों का जाल है। मैं जीवन में केवल तीन व्यक्तियों से प्रभावित हुआ हूँ — मेरे गुरुदेव से, मेरी माँ से और मेरे पिताजी से। मैंने गुरु दीक्षा लेने से पहले आत्मा के गुण में जीना सीखा। मैंने मनुष्यों के जीवन और अपने अन्दर 'मन' की चालाकियों के तमाशों को देखकर सीखा। इसलिये बार-बार कहता हूँ—

चश्मे दिल से देख तू, क्या क्या तमाशे हो रहे।  
दिल सतां क्या क्या हैं तेरे, दिल सताने के लिए।  
एक दिल लाखों तमन्ना उस पे भी भारी हवस।  
फिर जगह है कहाँ, जाना को आने के लिए॥  
साहिब कह रहे हैं —

मन तू मान शब्द उपदेसा।

सार शब्द औ गुरुमुख बानी, ताको गहो संदेसा॥  
जाहि तत्व को मुनिवर खोजै, ब्रह्मादिक सो ज्ञानी॥  
सोई तत्व गुरु चरनन लागे, भक्ति हेत कर प्रानी॥  
प्रथमे दया दीनता आवे, हाँसी मिथ्या त्यागी॥  
आतम चीन्ह परमातम जाने, सदा रहे अनुरागी॥  
सब्द प्रतीत औ सब्द कसौटी, निसदिन बिरह बिरागी॥  
जहँ को अर्थ तहाँ तो बूझै, जहँ लागी तहँ लागी॥  
कहै कबीर यह तत जो बूझै मानै सीख हमारी॥  
काल दुकाल तहाँ नहिं व्यापै सदा करौं रखवारी॥  
हे मन के वश में रहने वाले मनुष्य! तुम सद्गुरु के शब्द — सार को

ग्रहण कर गुरुमुख बनो। गुरुवाणी को सत्य का संदेश मानकर ग्रहण करो। जिस आत्म-तत्त्व को मुनि और ब्रह्मज्ञानी आदि ढूँढ़ रहे हैं, उस तत्त्व को गुरु चरणों में आकर प्राप्त करो। सद्गुरु की भक्ति से लगन लाओ। प्रथम तो अपने दिल में दया का भाव और दीनता लाओ, झूठ और हँसी को छोड़ दो। फिर आत्मा को पहचान कर परमात्म को जानो और सदा उसके अनुरागी रहो। शब्द की प्रीति और शब्द की कसौटी पर हमेशा रहकर विरह-बैराग में रहें। जहाँ तक उस शब्द का अर्थ निकलता है, वहाँ तक पहुँचों और उसी में रमे रहो। साहिब कह रहे हैं कि जो इस आन्तरिक भक्ति-भाव की लगन में रहेगा, उसके ऊपर काल का प्रभाव नहीं पड़ सकता। सद्गुरु का शब्द सदा रक्षा करेगा।

सद्गुरु के '**नाम**' सत्य में लगन लगाने से ही परमपद मिलता है। जीव कर्म-प्रधान है। कर्मों के संचय से ही मन उसे वहीं ले जाता है जिसका जीव ध्यान करता है। सब जीव-शरीर स्वप्न ही हैं, इनमें प्रकृति के ही भेद छिपे हैं। शरीर में लिप्त होकर कोई भी इससे बाहर नहीं जाता। आत्मा रूपी '**हँस**' इन्हीं शरीरों में लिप्त होकर अपना स्वरूप भूली है। फिर भी, आत्मा का मूल स्वरूप कभी नहीं बदलता। जिस प्रकार वर्षा के बादल सूर्य को ढक लेते हैं, उसी प्रकार माया, '**आत्मा**' को ढक तो सकती है किन्तु उसके स्वरूप में कोई परिवर्तन नहीं कर सकती है।

भवसागर अत्यंत कठिन है, उसे पार करने के लिए सत्य '**नाम**' की **आध्यात्मिक-शक्ति** ही चाहिये। यदि भवसागर की तीव्र धारा दिखाई नहीं पड़ी तो बार-बार मृत्यु ही होगी। शरीरों से मुक्ति कभी नहीं होगी। जिसमें से उत्पन्न हुए ऐसे गर्भ में फिर समाना होगा। विकारों के रहते अपना मूल रूप नहीं जानोगे।

आत्म रूप हँस कौन है और सत्यपुरुष का अमरधाम कहाँ है? इसी रहस्य को अज्ञान में फँसे मनुष्यों को '**सद्गुरु**' पुनः-पुनः संसार में बताते हैं। केवल सद्गुरु आध्यात्मिक-शक्ति से सत्यमार्ग पर ले जाते हैं। कौन-सा शब्द अन्तर में आत्मसात होकर सब दुःखों को दूर करने वाला है, यह समझना होगा। यह भलि-भाँति जान लेना चाहिये कि सब आचार्य और धर्म-प्रवर्तक केवल अपने-अपने धर्ममत की व्याख्या करते हैं। ऐसे किसी गुरु से

आत्म-कल्याण नहीं होगा जो केवल धर्मशास्त्रों के आधार पर निर्मित किसी धर्ममत का ज्ञान रखता हो। इसीलिये साहिब कबीर ने कहा कि कोई विवेकी जिज्ञासु ही उनके सत्य-शब्द को ग्रहण करता है। कोई विवेकी संत ही उनकी वाणी का पारखी होकर धारण करता है।

**कोई एक हँस विवेकी होवे। सत्य शब्द जो गही विलोवे ॥**

**कोटि माहिं कोई संत विवेकी। जो मम बानी गहे परेखी ॥**

सत्य का राही एक चित्त होकर गुरु के शब्द में लीन रहता है। सत्यमार्गी के लिए साधारणजन और राजा में कोई फर्क नहीं रहता। वह जिससे भी मिलता है अपनेपन से ही मिलता है और दुविधा का भाव मिटा देता है। क्यों कि सत्यमार्गी के अन्दर भक्ति-भाव चल रहा होता है। सद्गुरु ही सत्य का मार्ग, मोक्ष का मार्ग देकर गुप्त 'नाम' से भक्तों को सुरक्षा देकर भयमुक्त बनाते हैं। ऐसी 'आध्यात्मिक शक्ति' अन्य कहीं मिलना सम्भव नहीं है। साहिब वाणी में समझा रहे हैं —

**चार पदारथ इक मग माहीं। बिन सद्गुरु कोई पावत नाहीं ॥**

कह रहे हैं मेरे इस एक ही पथ पर जाने से — काम-अर्थ, धर्म और मोक्ष बिना कोई साधना और तपस्या किये मिल जाते हैं। केवल सद्गुरु की आज्ञा पर चलने, शब्द के पालन मात्र से संतति सुख मिलेगा। धन के अभाव के कारण कोई कार्य नहीं रूकेगा अर्थात् जीवन के कार्यों हेतु साहिब कृपा से पर्याप्त धन होगा। तीसरा धर्माचरण से युक्त जीवन रहेगा। चौथा सबसे उत्तम, मनुष्य देह का लाभ, 'मोक्ष' सद्गुरु ही प्रदान करेंगे। यदि मनुष्य मन-माया के इस देह धर्म को जानकर सद्गुरु, सत्य 'नाम' को अपने अन्दर का धर्मभाव नहीं बनाता तो पछताना ही पड़ेगा। मनुष्यों को अपनी 'आत्मा' के गुणों के समान उसी के अनुरूप धर्म-आस्था में प्रवृत्त होने से 'सत्य' का बोध होगा।

भीतर और बाहर की समस्त इन्द्रियों से 'मन' ही आत्मा की अनश्वर-शक्ति लेकर अपने अनुकूल कर्म करवाता है। मनुष्य को सद्गुरु के मिलने

पर ही देह में स्थित उस गुप्त वस्तु (आत्मा) का ज्ञान होता है। विरले ही मनुष्य इस गुप्त वस्तु सद्गुरु-शब्द को ग्रहण कर पाते हैं।

पाँच तत्व के भीतरे, गुप्त वस्तु अस्थान।

विरले मरम पाई हैं, गुरु के शब्द प्रमान॥

उस मार्ग पर सनकादिक, ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी जाने में थक गए। उस गुप्त वस्तु की बात तो वही कर सकेगा जिसने उस अनश्वर मूल सुखधाम को देखा है; जो उस अमरधाम का वासी है। साहिब ने यही समझाते हुए कहा —

जिहि मारग सनकादि गै, ब्रह्मा विष्णु महेश।

सो मारग सब थाकिया, काहि कहाँ उपदेश॥

त्रिलाकों के स्वामी सृष्टि के विनाश होने तक ही रहते हैं और फिर सृष्टि रचना में जन्म लेते हैं। आत्मा तो पारस रूप 'पारस सद्गुरु' को पाकर ही इस लौह रूप संसार से मुक्ति पाती है।

### जीवों में ज्ञान चेतना कम-ज्यादा क्यों है

मानव-देह अनुपम है, केवल इसी में गुरु-ज्ञान समा सकता है। इसी कारण कालपुरुष ने चौरासी लाख जीव-योनियों का चक्र बनाया ताकि जीवात्मा भ्रमित रहे। विभिन्न योनियों से आने के कारण जीव चेतन नहीं हो पाता है। इसी तरह कालनिरञ्जन मानव-योनि पर राज करता है। यदि लगातार मानव-चोला मिलता रहे तो जीव चेतन होकर भक्ति में लग जायेंगे और कालपुरुष का संसार-कार्य नहीं चलेगा। मानव-तन पाकर ही जब कोई जीव सद्गुरु से सच्चे 'नाम' को पाता है तो अमरलोक 'मोक्ष' पाता है। साहिब ने 84 लाख योनियों का वर्णन किया है —

**अस्थावर खानि** — नौ लाख जल-जीव योनि अस्थावर-खानि के हैं, इनकी रचना एक ही तत्व से हुई। इस योनि से मनुष्य-तन में जाने वालों की बुद्धि स्थिर नहीं होती। एक क्षण में तो पोथियाँ पढ़ने लगते हैं और मौका

मिलने पर सबके घर नाचने लगते हैं। एक पल तो अच्छे कर्म करने लगते हैं और दूसरे ही पल कुकर्मों में लग जाते हैं। कामातुर बातें करते हैं, चोरों की तरह दूसरों के घरों में घुसते हैं। कोई शर्म नहीं होती, हँसते हैं। आँखें लाल हो जाती हैं, ऐसे लोगों का भेद नहीं जाना जा सकता है।

**उकमज खानि** — कीट-पतंगे खानि में 27 लाख जीव-योनियाँ हैं। इनकी रचना दो-तत्वों वायु और अग्नि से हुई है। उकमज खानि से मनुष्य-तन में आने वालों को शिकार करने में बड़ा आनन्द आता है। शिकार मारकर लाते हैं और बड़े जतन से पका कर खाते हैं। हृदय उनका कठोर होता है और ऊपर से कोमल बनते हैं। झूठ बोलते हैं, टेढ़ी पगड़ी पहनते हैं। गुरुजन की निंदा करते हैं।

**अण्डज खानि** — इसमें 14 लाख जीव-योनियाँ हैं, इनकी रचना में जल, वायु और अग्नि तीन तत्व होते हैं। अण्डज-खानि से मनुष्य-योनि में आए लोगों में निद्रा, काम, क्रोध होता है। दरिद्रता, चोरी, पराई निंदा, दूसरों को सताना उनका काम होता है। सबसे बहस करते हैं, पर कुछ ज्ञान, ध्यान उनमें नहीं होता। वेदशास्त्रों का कुछ पता नहीं होता। जुआड़ी-शराबी होते हैं।

**पिण्डज खानि** — इनमें 30 लाख जीव-योनियाँ चार तत्वों से बनी होती हैं। 4 लाख मनुष्य योनियाँ पाँच तत्वों से निर्मित होती हैं। इन चार लाख मनुष्य-योनियों में जो मनुष्य तन से ही पुनः मनुष्य-देह में आते हैं, उन्हें माया, मोह, ममता आदि भी नहीं सताती और उनके दुश्मन भी उनसे डरते हैं। ऐसे दूसरों की निंदा नहीं करते। कुछ मनुष्य-जन्म लेने के बाद जल्दी शरीर छोड़ देते हैं, अपनी आयु से पहले शरीर त्याग देते हैं। ऐसे जीव पुनः मनुष्य-तन में आने पर वीर पुरुष होते हैं। उनके पास भय नाम की कोई चीज नहीं टिकती। गुरु से प्रेम करते हैं। वेद-पुराण पढ़कर चर्चा करते हैं। राज, भोग और स्त्री से प्रसन्न रहते हैं। उनकी आँखों में तेज और देह में पराक्रम होता है। वे अपने कर्मों से स्वर्ग तो प्राप्त कर ही लेते हैं। ऐसे मनुष्य सत्यनाम को जानकर गुरु चरणों में चित्त लगाते हैं। ऐसे लक्षण जिनमें होते हैं, वे मनुष्य



योनि से ही मनुष्य-तन में अपनी छूटी हुई आयु पूरी करने जन्म लेते हैं।

पिण्डज खानि में 4 लाख मनुष्य योनियाँ पाँचों-तत्त्वों से निर्मित होने से मनुष्य ही स्वर्ग और परमपद मोक्ष की प्राप्ति कर सकते हैं। 84 लाख जीव-योनियों की उत्पत्ति का वर्णन साहिब कबीर ने अपनी वाणी में किया है। आद्यशक्ति, ब्रह्मा, विष्णु और महेश ने जीव-योनियों को उत्पन्न किया है।

चौरासी लाख योनि न भयऊ। चार खानि चारहु निर्माऊ॥  
 पुनि माता अस वचन उचारा। रचहु सृष्टि तुम तीनों बारा॥  
 अण्डज उत्पत्ति कीन्हा माता। पिण्डज ब्रह्मा कर उत्पाना॥  
 उष्मज खानि विष्णु व्यवहार। शिव अस्थावर कीन्ह पसारा॥  
 खानि अण्डज तीन तत्व हैं, अप वायु अरु तेज हो॥  
 अस्थावर खानि एक तत्वहि, तत्व जल का थेंग हो॥  
 उष्मज तत हैं दोय, वायु तेज सम जानिये॥  
 पिण्डज चारहिं होय, पृथ्वी तेज अप वायु सम॥  
 पिण्डज नर की देह सँवारा। तामें पाँच तत्व विस्तारा॥  
 ताते ज्ञान होय अधिकाई। गहे नाम सतलोकहिं जाई॥  
 नौ लख जल के जीव बखानी। चौदह लाख पक्षी परवानी॥  
 किरम कीट सत्ताइस लाख। तीस लाख पिण्डज के भाखा॥  
 चतुर लक्ष मानुष परमाना। मानुष देह परम पद जाना॥  
 और योनि परिचय नहिं पावे। कर्म बँध भव भटका खावे॥

साहिब ने स्पष्ट कर कहा — यद्यपि चारों खानि में एक जीव है, पर तत्त्वों के गुणों के कारण कम-ज्यादा ज्ञान और चेतना है। पिण्डज खानि की मनुष्य योनि में पाँचों-तत्व हैं, इस कारण मनुष्य में ज्ञान लेने और अधिक चैतन्य होने की शक्ति है। मानव-तन भक्ति-ध्यान के अनुकूल है और भौतिक तथा आध्यात्मिक विकास करने में सक्षम है।

चार खानि जिव एकै आहीं। तत्व विशेष अहैं सुन ताहीं॥  
 सो अब तुमसों कहों बखानी। तत्व एक अस्थावर जानी॥

उष्मज दोय तत्व परमाना । अण्डज तीन तत्व गुण जाना ।।

पिण्डज चार तत्व गुण कहिये । पाँच तत्व मानुष तन लहिये ।।

तासों होय ज्ञान अधिकारी । नर की देह भक्ति अनुसारी ।।

जिस जीव-खानि की देह छोड़कर जीवात्मा मानव-देह में आती है, उसी के अनुसार उसमें ज्ञान और गुणों का समावेश हो जाता है। इसी कारण मनुष्य-योनि भी चार लाख हैं। मानव-तन बड़ा सुखदायी हैं; इसी में गुरु का ज्ञान समा सकता है।

इस सृष्टि और देहान्तरणों के भ्रम के कारण आत्मा मन रूप निरञ्जन के बन्धनों में है। आत्मा की अनश्वर और असीमित शक्ति कम नहीं हुई है। जो वस्तु कम होती है और बढ़ती है, उसका विनाश होता है। आत्मा का किसी भी 'देश-काल-अवस्था-स्थिति' में विनाश नहीं होता, किसी 'भौतिक-तत्व' का प्रभाव उस पर नहीं पड़ता। केवल 'देह-भ्रम' का आवरण है। आत्मा ने शरीर को अपना मान लिया है, मन आत्मा की शक्ति से शरीर की इन्द्रियों का संचालन करवा रहा है। आत्मा तो अपनी दिव्य कोटि-आँखों से सब कुछ देख सकती है, किन्तु उसकी शक्ति से शरीर की दो आँखें अति-सीमित दायरे में देखती हैं। आत्मा तो अपने कोटि हाथों से अनंत कार्य कर सकती है लेकिन उसकी शक्ति से शरीर के दो-हाथों से कर्म करवाया जा रहा है। आत्मा तो कोटि पैरों से चलने की शक्ति रखती है किन्तु उससे शरीर के पैरों द्वारा चलने की सीमित शक्ति ली जा रही है। इस प्रकार शरीर की 14 इन्द्रियों से आत्मा की शक्ति एक सीमित दायरे में लेकर 'मन' अपनी इच्छानुसार कर्म करवा रहा है। 'मन' के साथ रहकर आत्मा कर्मानुसार शरीरों में भटक कर अपना स्वरूप भूल गई है। केवल एक सद्गुरु जो 'मन' के दायरे से बाहर है परमात्मलीन है, आत्मा को उसके शक्ति-स्वरूप की स्मृति दिलाकर मुक्त करने में समर्थ है। जैसे एक सिंह-शावक जंगल में गड़रिये की भेड़ों में शामिल होकर भेड़ों के साथ रहकर उन जैसा ही हो गया। बड़ा होकर भी सिंह शावक भेड़ों जैसा बोलता और खाता। सिंह शावक की शक्ति कम नहीं हुई थी पर वह भेड़ों के बीच रहकर भ्रमवश अपनी शक्ति को भूल

गया था। एक बार जंगल के सिंह ने भेड़ों के बीच पले उस शेर को देखा तो उसका मूल स्वरूप याद दिलाया; दहाड़ना बताया। भेड़ों के बीच रहे शेर ने जब दहाड़ा तो सब भेड़ें भाग गईं और वो शेर अपने स्वरूप को जानकर अपने निज-निवास जंगल में गया। इसी प्रकार शरीर में भूली आत्मा को उसके ही स्वरूप में परमात्मलीन 'सद्गुरु' जब अपनी 'सुरति' देते हैं तो 'आत्मा' अपनी शक्ति को जानकर 'मन' की इच्छा और संकल्पों को छोड़कर अपने निजघर अमरलोक को पाती है। आत्मा की स्वरूप-शक्ति प्राप्त होने पर ही पंच-तत्वों की बाहरी भक्तियाँ छोड़कर अपने अन्तर में आत्म-भक्ति भाव चलता है। यही समझाया साहिब ने —

भक्ति तदन्तर प्रेम है, बाहर से क्या काम।  
रोम रोम भीना रहे, निशदिन आठों याम॥

### पंच-तत्वों से रहित आत्म-शक्ति

संसार के माया शरीरों में फँसी जीव-रूप 'आत्मा' की अमरता और शक्ति का रहस्य क्या है? सभी धर्मशास्त्र मानते हैं कि आत्मा अमर है। तत्वों से आत्मा के स्वरूप का तकनीकी भेद क्या है; मनुष्य इस पर चिंतन नहीं करता। इस भेद को समझने हमें पंच-तत्वों के गुणों और आत्मा के गुणों को जानना होगा। सृष्टि पाँच-तत्वों से बनी है पृथ्वी-जल-अग्नि-वायु और आकाश। मनुष्य देह भी इन्हीं पाँच तत्वों से निर्मित है। ये पाँचों तत्व नश्वर हैं अतः सृष्टि और सभी देह-पिण्ड नश्वर हैं। सृष्टि में केवल इस पृथ्वी लोक (मृत्यु लोक) में जल होने से जीवन है। अन्य किसी ग्रह पर जल नहीं है इस कारण जीवन नहीं है। वैज्ञानिक अब अंतरिक्ष-यानों द्वारा शोध उपकरण भेजकर यही खोज करने में लगे हैं कि अन्य किसी ग्रह पर भी जल हो तो जीव भी हो सकते हैं। यदि किसी ग्रह पर जल हो तो मनुष्य के जीने हेतु उपयोग में आ सके। पृथ्वी नष्ट होने पर मनुष्य जाति को अन्य जीवन योग्य गृह पर बसाया जा सके। संतों ने सृष्टि की रचना और विनाश का जो क्रम बताया है उसमें केवल 'आत्मा' विनाश के दायरे में नहीं आती। सृष्टि की

पुनर्रचना के बाद जीव के गर्भ में आने और विकास का वर्णन संतों ने किया है। विज्ञान ने शोध से यह तो जान लिया है कि इस प्रकाशमय आकाश (शून्य) का आधार अंधकार (Black Matter) है। विज्ञान ये जानने में असमर्थ है कि अंधकार का तत्त्व क्या है। साहिब ने आकाश के बाद महाशून्य (7-अंधकारमय आकाशों) का वर्णन अमरलोक जाने के मार्ग में किया है। आत्मा को उस अमरलोक के सत्यपुरुष का अंश रूप 'हँस' वर्णित किया है जो अनश्वर है। काल निरञ्जन की इस सृष्टि के आकाश मण्डलों के समान सूर्य-चन्द्र-तारे-पृथ्वी-जल आदि नश्वर तत्त्व अमरलोक में नहीं हैं। ऐसे अमरलोक के सत्यपुरुष की अंश रूप 'आत्मा' (हँस) ही इस नश्वर सृष्टि में जीव रूपों में रहकर भी अनश्वर है। 'नाम' (शब्द) और जीवात्मा हुए हँस का वर्णन शिष्य धर्मदास से करते हुए साहिब की वाणी है—

अवर्ण रूप वर्णों नहीं जाई। धर्मदास सुनियो चितलाई॥

घोडश भान हँस को रूपा। पुरुषहि महिमा अमृत अनूपा॥

अमर शब्द सों प्राणी भयऊ। वही शब्द सों लोकहिं गयऊ॥

पार परवाना शब्द है सारा। ऐही मूल सों हँस उबारा॥

गोस्वामी तुलसीदास जी भी रामचरित मानस में नाम और आत्मा का वर्णन करते हुए कहते हैं —

ईश्वर अंश जीव अविनाशी।

चेतन अमल सहज सुखरासी॥

ब्रह्म राम ते नाम बड़ वरदायक वरदानी।

रामचरित सत्कोटि में लिया महेश जियजान॥

कबीर साहिब ने जिस अमर-अकह शब्द (नाम) के बारे में कहा संतों ने उसी 'नाम' को अकह-शब्द रूप सुरति (नाम) की महिमा गाई है। ऐसी अविनाशी आत्मा को जानने के लिए यह जानना जरूरी है कि नाश क्या है? सृष्टि के तत्वों का विनाश क्या है? पृथ्वी तत्त्व नश्वर है, पृथ्वी नष्ट होती है क्योंकि यह जल से निर्मित है। मनुष्य जो भी आवास मिट्टी, पत्थर, सीमेंट, रेत, लोह, जल से बनाता है वे सब पृथ्वी तत्त्व और जल से बने हैं। बड़े

से बड़े भवन देख-रेख मरम्मत के अभाव में जीर्ण-शीर्ण होकर गिर जाते हैं; खण्डहर हो जाते हैं क्योंकि जल-तत्व समाप्त हो जाता है। शरीर में भी पृथ्वी और जल तत्व हैं। पृथ्वी का रंग **पीला** है और स्वाद **मीठा** है। हाड़, माँस, चमड़ी, रोम, नाखून **पृथ्वी-तत्व** से बने हैं। बच्चे मिट्टी खाते हैं क्योंकि स्वाद मीठा है। मल का रंग भी पीला है क्योंकि पृथ्वी का रंग पीला है। इस प्रकार पृथ्वी तत्व को हम सब अपने शरीर से ही नष्ट होते प्रत्यक्ष देखते हैं। '**आत्मा**' में पृथ्वी तत्व और उसकी 5 प्रकृति नहीं हैं।

जल-तत्व जो पृथ्वी का कारक है, वही पृथ्वी का पुनः विनाश भी करता है। शरीर (देह-पिण्ड) भी जल तत्व के अभाव में नष्ट हो जाता है और जल से ही बनता है। खून, पसीना, लार, मूत्र, वीर्य जल-तत्व हैं शरीर में। जल का रंग **सफेद** है और स्वाद **खारा** (क्षारीय) है। रंग सफेद होने के कारण ही जल को जिसमें मिला दो उसी रंग का हो जाता है। इसी तरह जल की पाँच प्रकृतियाँ शरीर में हैं जो नष्ट होती हैं। जल की इन पाँचों प्रकृतियों खून, पसीना, लार, मूत्र, वीर्य का स्वाद खारा-क्षारीय है। '**आत्मा**' में जल की तत्व-प्रकृतियाँ नहीं हैं इसलिये '**आत्मा**' अनश्वर है। पृथ्वी-तत्व और जल-तत्व रहित है '**आत्मा**'। आत्मा की शक्ति इनसे परे है।

'**आत्मा**' का दूसरा गुण है '**चैतन्य**'। आत्मा का दूसरा गुण-रूप सदा-सर्वदा चेतनता है जिसे संतों ने '**सुरति**' (ध्यान) कहा। आत्मा में '**अग्नि**' तत्व भी नहीं है और वायु-तत्व भी नहीं है। हम सब जीवों के कर्मों में '**ध्यान**' ही पाते हैं। मनुष्य के जीवन का प्रत्येक कार्य ध्यान के बिना नहीं हो सकता। हम सबके अन्दर '**आत्मा**' का रूप ध्यान ही है, यही '**ध्यान**' हम सबकी अपनी '**आत्मा**' का रूप है। पैरों में अपनी राह पर जाने की शक्ति हमारा ध्यान ही है। बिना ध्यान के हमारे पैर हमें अपनी दिशा की ओर ले जाने में समर्थ नहीं है। हाथों से जो भी कर्म हमें करना है '**ध्यान**' से ही करना होगा। मुँह से जो भी भोजन लेना है यह ध्यान देकर ही लेना होगा कि खाने योग्य पदार्थ है। नासिका किसी भी गंध लेने का अनुभव तभी कराती है जब ध्यान उस ओर जाये। मुँह से जिभ्या बोलने में तभी सहायक होगी जब हम ध्यान देंगे कि क्या

बोलना है। शब्दों का आना ध्यान पर ही निर्भर है केवल उच्चारण मुँह और जिभ्या से होगा। नेत्रों से वही दिखाई देगा जिसे आप ध्यान देकर देखेंगे, यदि ध्यान नहीं है, नेत्र नहीं देख सकेंगे। आप सत्संग में मुझे देख रहे, सुन रहे हैं, समझ भी रहे हैं। यदि आपका ध्यान इस समय अपने घर-परिवार या किसी दूसरे की याद या घटना या धंधे पर चला जाये तो आप मेरे सामने बैठे होकर भी मुझे देख, सुन और समझ नहीं पायेंगे। इससे यह प्रमाणित होता है कि शरीर की इन्द्रियाँ केवल आत्मा-शक्ति के रूप ध्यान (सुरति) से ही कार्य कर रही हैं।

‘आत्मा’ सदा-सर्वदा चेतन है इसी शक्ति से शरीर से ‘मन’ इच्छानुसार कार्य ले रहा है। ‘आत्मा’ अग्नि-तत्त्व और वायु-तत्त्व पर निर्भर नहीं है। शरीर में अग्नि की पाँच-प्रकृतियाँ भूख-प्यास-आलस्य-जम्भाई-नींद सब जीवों में है। अग्नि का रंग **लाल** है और स्वाद **तीखा** है। शरीर में खून का रंग लाल, मूत्र में जलन और शरीर में ताप या जलन कभी-कभी अग्नि-तत्त्व के अधिक होने और जल की कमी के कारण ही होती है। अग्नि तत्त्व, जल को नष्ट कर देती है। पृथ्वी और जल नष्ट होने के बाद सूर्य-चन्द्र-तारे आदि भी वायु नष्ट कर देती है। शरीर के पृथ्वी और जल-तत्त्व भी नष्ट होकर अग्नि और वायु-तत्त्व में समा जाते हैं। वायु-तत्त्व की पाँच-प्रकृतियाँ सिकुड़ना, पसरना, बोलना, सुनना, बल लगाना शरीर में इन्द्रियों को चलाती हैं। वायु-तत्त्व से ही हाथ-पैरों से बल लगता है, कानों से सुनाई देता है, मुँह से शब्द निकलते, स्वाँस लेते हैं, शरीर में दस-रूपों में वायु बँटकर सुरत-निरत शक्ति है। सुरति (ध्यान) की शक्ति इसी प्रकार शरीर कार्यों में सम्मिलित है। इस आत्म-शक्ति रूप ध्यान को अग्नि जला नहीं सकती, पानी गला नहीं सकता, वायु विलीन नहीं कर सकती, आकाश वलीन नहीं सकता, शस्त्र काट नहीं सकते। वायु का रंग **नीला** और स्वाद **खट्टा** है। आकाश में वायु-मण्डल के कारण ही आकाश का रंग नीला दिखता है जो वास्तव में काला है। शरीर में वायु का ही प्रवाह नाभि स्थल से है। पेट में अपच होने पर वायु के कारण ही खट्टी डकारें आती हैं, उल्टी भी खट्टी

निकलती है। शरीर पर चोट या कोई मार का निशान भी नीला पड़ता है। जहर से भी शरीर नीला हो जाता है यह वायु का ही प्रभाव होता है।

पाँचवां आकाश-तत्त्व है, इसका रंग **काला** और स्वाद **फीका** है। आकाश-तत्त्व से ही शरीर की त्वचा स्पर्श का, नैत्र रूप का, जिह्वा रस का, नासिका गंध का, और कान शब्द का अनुभव करते हैं। आकाश-तत्त्व की ये पाँच-प्रकृतियाँ भी शरीर के मृत होने पर समाप्त हो जाती हैं। शरीर पाँचों-तत्त्वों का अनुभव कर्म जिस शक्ति से कर्ता है वो ही आत्मा या सुरति है। यदि शरीर और मन की स्वयं की शक्ति होती है तो मृतक के शरीर से क्या निकला जो चेतन था। वही चेतन-शक्ति आत्मा, रूह, सोल (SOUL) सुरति है जो पाँचों-तत्त्वों से परे।

आत्मा अमल है उसमें किसी प्रकार का मल या गन्दगी नहीं है। हम पाते हैं कि गन्दगी पृथ्वी तत्त्व की वस्तुओं के जल में मिलकर सड़ने से उत्पन्न होती है। इसी कारण नाली, गटर, रूके हुए पानी के गड्ढे आदि में बदबू उत्पन्न होती है। आत्मा में कोई तत्त्व ही नहीं है, पृथ्वी-जल तत्त्व भी नहीं। इस कारण शरीर में रहते हुए भी आत्मा का अमल गुण यथावत है। इसी अमल आत्म-शक्ति के कारण जब तक शरीर में आत्मा रहती है, शरीर सड़ता नहीं है। मृत होने के पश्चात शरीर सड़ कर बेहद गन्दी बदबू देता है। इसीलिये साहिब ने पाँच-तत्त्वों के जीवित शरीर में रहते हुए भौतिक चीजों पर निर्भरता के बारे में कहा —

**पाँच सखी पिऊ पिऊ करत हैं,  
भोजन चाहत न्यारी न्यारी।**

आत्मा को किसी भी बाहरी वस्तु की आवश्यकता नहीं है। आत्मा 'सहज' है किसी भी प्रकार के विकार से रहित है। काम-क्रोध-लोभ-मोह-अहंकार मन की वृत्तियाँ हैं इस कारण मन और शरीर में सहजता है। आत्मा के समान गुण-तत्त्व होने से उसमें समाय अर्थात् शुद्ध सुरति में रहने वाले संत-सद्गुरु ही सहज-सरल होते हैं। शिशु या बालक के समान सहज निर्विकार होते हैं, आत्मलीन संत। संसार के मनुष्यों में आत्म-शक्ति की

इस सहजता का नितांत अभाव होता है।

फिर आत्मा का पाँचवा तत्त्व है, सुखरासी अर्थात् आत्मा स्वयं आनंद का सागर है। आत्मा को कहीं बाहर से आनंद आहूत नहीं करना है। शरीर की इन्द्रियों को जो आनंद का अनुभव प्राप्त होता है वो आत्मा की इसी आनंदमयी-शक्ति का अंश रूप है। आत्म-आनंद और इन्द्रियों के सीमित भौतिक आनन्द की व्याख्या विस्तृत है। आत्मा अपने इस आनन्दमयी स्वरूप की सहजता, अमलता, चेतनता, और अनश्वर तत्वों के कारण सद्गुरु से सुरति (नाम) पाकर 'मन' के बँधनों से मुक्त हो जाती है। शरीर की इन्द्रियों का आनंद केवल नश्वर पाँच-तत्वों के कारण प्राप्त होने वाला क्षणिक आनंद होता है। यही क्षणिक आनन्द मुँह, आँख, कान, नाक और त्वचा से प्राप्त होता है। इन्द्रियों से प्राप्त होने वाला किसी भी तरह का आनन्द भक्ति-भाव उत्पन्न करने में सहायक नहीं होगा।

सद्गुरु से 'नाम' पाकर आत्मा का आनंदमयी स्वरूप ही अन्तर में भक्ति-भाव उत्पन्न करता है। इसी को साहिब ने कहा — 'पारस सुरति संत के पासा।' हम 'सुरति-शब्द अभ्यास' नहीं बोल रहे हैं। आप बस सद्गुरु शब्द का ध्यान (सुरति) रखना तो भक्ति-भाव में चेतन रहोगे। 'नाम' को पाकर भय-रहित हो जाओगे। जब गुरु की दया होती है तभी 'हँस' अमरलोक में जाता है। परमपुरुष का 'नाम' ही स्वयं परमपुरुष थे जो प्रकट करने की इच्छा से अमरलोक रूप हुए। यही अकह सार-नाम सद्गुरु देता है, इसलिये निरञ्जन उसे अपने शीश पर पाँव रखने देता है। जो भी मनुष्य इस 'नाम' से सुरति जोड़ लेता है, उसे काल का भय नहीं रहता।

महा-आकाशों और हमारी सृष्टि के शून्य (आकाश) में समाई पवन में कालनिरञ्जन ने हँसात्माओं से जीवों का सृजन किया है। जीवों की स्वाँस ऊपर की ओर उठकर अधर में समाती है। परमपुरुष का अंश होने के कारण 'जीवाणु' (आत्मा) का अधर में स्वाँसा से मिलन होता है। जो जिसका अंशी है उसी की ओर जाता है। जैसे जल समुद्र का अंश है, इसलिये जल का बहाव समुद्र की तरफ ही होता है। अग्नि सूर्य की अंश है इसलिए अग्नि की लौ ऊपर ही उठती है। नाभि से अधर में जाकर फिर



स्वाँसा नाभि में ही आती है। इसी क्रम से बिन्दु-जीव अधर से पेट में तीन मुखों की तरफ दौड़ पड़ते हैं। यही स्वाँसा मनुष्य के माया-शरीर के बाँय भाग को जाग्रत करके काम का वेग मन में लाती है। बसन्त ऋतु आने पर प्राणियों के पेट में पुनः स्वाति-पवन पहुँचती है। यही बसन्त ऋतु-पवन नारी-तन में समाने पर बाँया कमल-दल खुलता है और काम-भावना उत्पन्न होती है। स्वाति-बुन्द की शक्ति मिलने पर शिव-शक्ति का मिलन होता है। अर्थात् प्राणी के रक्त-अणु में, वीर्य बनने के पूर्व ही जीव-बिन्दु समा जाते हैं। स्वाति पवन द्वारा बिन्दु को ग्रहण कर लेने पर स्वाँस-वायु बाँझ नहीं रहती। इस प्रकार पवन की उत्पत्ति बताते हुए स्वाति-पवन से 'जीवों' का प्राणी-रक्त में रोपण होकर सम्पुष्ट होने का वर्णन साहिब ने किया है। इसी स्वाति-पवन का रसपान करने वाली 'जीव-आत्मा' को जो परमपुरुष का अंश है कालपुरुष खा नहीं सकता। यही 'आत्मा' की अमरता का रहस्य है।

### पवन और जीव का सृजन

धर्मदास सुन पवन की खानी। कूर्म मुखते पवन उत्पानी॥  
 चारि अरति पवन उठि आया। ताको भेद कोई जन पाया॥  
 शीश कूर्म का कहूँ बखानी। साधु सुजन कोई कोई जानी॥  
 माया आठ पृथ्वी में भीना। आठ दिशा भई ताकर चीना॥  
 माया आठ आठ है माना। चारि दिशा चारि कौन परमाना॥  
 माया तीन छीनि ले गयऊ। माया तीन पेट में रहेऊ॥  
 काकर चौदह भुवन बनाया। सोई रूप नर करे सुभावा॥  
 अधर पवन सो जीव उत्पानी। चलै उर्द्धसों अधर समानी॥  
 ताहि वचन को पारस नामा। होय संयोग उठ जब कामा॥  
 बाँई ओर ते देहि जगाई। उगमें काम चले मनताई॥  
 चलै बिन्दु तीन मुख धाई। उरध हुते अधर जब आई॥  
 ऋतु बसन्त जा दिन होई। स्वाति पवन पड़ै पुनि सोई॥  
 ऋतु बसन्त त्रियतन आवे। खुले कमल तब चाह जनावे॥

शिव शक्ति सो मिलिहै आई । स्वाती बुन्द शक्ति तब पाई ॥  
 तौन पवन बिन्दु गहि लेही । ताते बाँझ होय नहिं तेहि ॥  
 उत्पति पवन कही हम सोई । स्वाति पवन ले सम्पुट होई ॥

जाहि पवन पर चंदा रसे, ताहि न ग्रासे काल ।  
 को यह भेद विचारि है, सोई जौहरी लाल ॥

शिष्य धर्मदास को कबीर साहिब ने पवन से जीवों के सृजन का रहस्य बताया । कूर्म जी के मुख से पवन की उत्पत्ति हुई है । चार स्तरीय-लोकों से आए पवन का भेद कोई विरला संत पाया है । कूर्मजी के आठ-शीशों का वर्णन कर साहिब ने समझाया कि पृथ्वी-लोक में माया आठ तरह से समाई है । आठ दिशाएँ ही इसकी पहचान हैं, ये ही माया के आठ शीश हैं । चार दिशाएँ और इन दिशाओं के चारों कोने आठ-शीश माने गये हैं । इनके अलावा निरञ्जन ने कूर्म जी से तीन शीश छीने थे और तीन उनके पेट में ही रह गये थे । इन्हीं चौदह शीश से सृष्टि के 14-भुवन कालपुरुष ने बनाये हैं । ये ही कालपुरुष के चौदह-यम और मनुष्य-देह में स्थित चौदह देवता हैं । ये ही कालपुरुष का गुण-स्वभाव रूप हैं ।

साहिब ने शिष्य धर्मदास से कहा — मैंने पवन भेद का जो वर्णन किया है उसी में काल का पसारा है; यह भेद न्यारा है । जीव-बिन्दु स्वयं ही दौड़ जावे तो स्वाति-पवन उसको छू भी नहीं सकता पुनः शून्य होकर रह जाएगा । इस भेद को चित्त में समा लो । मैंने जो पवन-भेद तुमसे कहा है 'नाम' तो इससे भी न्यारा है ।

धर्मदास तोहि कहूँ बिचारा । सूझि पड़ै सो भेद न्यारा ॥  
 स्वाती पवन छुवन नहीं पावे । बिन्दु अकेला जो उठि धावे ॥  
 ताते शून्य होय पुनि जाई । कहूँ भेद चितराखु समाई ॥  
 पवन भेद हम तुमसो कहेऊ । नाम न्यारा इनते रहेऊ ॥

पवन भेद हम भाखेऊ, तामें काल पसार ।  
 पचासी पवन के बाहिरे, अरज शब्द है सार ॥

मूल में शुक्राणु एक जैसे थे इसलिये 84 लाख जीव मूल रूप में एक समान शुक्राणु जैसे हैं । बाद में जैसा गर्भाशय मिला वैसा विकास हुआ, यथा — मच्छर, चींटी, हाथी, शेर, गाय, बैल आदि बने । गाय को सुअर के

शुक्राणुओं से क्रास किया तो जर्सी-गाय बनी, सुअर नहीं बना, क्योंकि गर्भाशय गाय का मिला। जीव का आकार गर्भ से बनता है, शुक्राणु तो सभी समान हैं। **‘एक रूप सभी हैं, न खुदा बंद न बन्दा।’**

ऐसे ही सद्गुरु नाम-दान देकर शिष्य की आत्मा में स्वयं ही प्रवेश कर अपने जैसा बनाने का बीजारोपण कर देते हैं। जीव की रचना और आत्म-शक्ति के इसी वर्णन से साहिब ने पुरुष से पुरुष को रचना कहा है।

**पुरुष रचन्ते नारी है नारी रचन्ते पुरुष।**

**पुरुषे पुरुषे जो रचा सो बिरला संसार॥**

**कबीरा सो बिरला संसार....।**

आत्मा का कौन-सा देश है? संतत्व की धारा ने आकर सर्गुण-निर्गुण से ऊपर आत्म-भक्ति का अध्यात्म बताया। इसलिये कहा — **‘नाम-सत्य’** हो फिर उस नाम में समाया गुरु सत्य हो, **‘सद्गुरु हो’** और नाम पाने वाला **‘मनुष्य’** शिष्य होकर सच्चे हृदय से सद्गुरु में पूर्ण विश्वास से समर्पित हो। सद्गुरु और नाम को भूलने वाला मनुष्य ही मन के शिंकजे में आएगा। सद्गुरु ही नियमों का पालन करने की भी शक्ति देने वाला है। सद्गुरु के ध्यान सुमिरन से ही **‘मन’** पर अँकुश लगेगा। तभी शिष्य भी **‘सत्य’** होगा। इसतरह तीनों सत्य मिलने पर **‘आत्मा’** का अमरलोक में वास होगा।

**तीन लोक में जो कुछ आहे। काल निरञ्जन सबको डाहे॥**

**तीन लोक से भिन्न पसारा। अमरलोक सद्गुरु का न्यारा॥**

सद्गुरु द्वारा, कर्मफलों से पूर्णतः मुक्त कर आत्मा को **‘हँस’** बनाकर, अमरलोक ले जाया जाता है। इस तरह सृष्टि की रचना और विनाश के क्रम से पूर्णतः मुक्त होकर अविनाशी आत्मा अपने अंशी परमपुरुष में ही अपना आनन्दमयी स्वरूप प्राप्त कर लेती है। क्योंकि अमरलोक ही आत्मा का निज घर है। निरञ्जन की सृष्टि में जीव-शरीरों में आत्मा जन्म-जन्मांतरों में कभी भी अपनी शक्ति को प्राप्त नहीं होती है। इसीलिये गण-गन्धर्व-ऋषि-मुनि और देवों में शरीर पाकर भी आत्मा कालनिरञ्जन की व्यवस्था के अधीन असन्तुष्ट ही रहती है। **‘सत्य’** अमरलोक पाने के बाद आत्मा को निरञ्जन के लोकों और देवों-देवियों की कोई स्मृति शेष नहीं रहती; उसे ऐसा नहीं लगता कि वो पहली बार अमरलोक में है। इसीलिये सद्गुरु तीन-लोकों

की निरञ्जन व्यवस्था के देवों-भगवानों से 'सुरति' (ध्यान) हटाकर परमपुरुष के गुप्त-नाम की सुरति से जोड़ते हैं। उसी सत्यनाम को सद्गुरु स्वयं शिष्य में प्रवेश कर सिमरन हेतु देते हैं।

'आत्मा' घटती-बढ़ती नहीं, विस्तारित और संकुचित नहीं होती, परिवर्तन संसार का नियम है, पाँचों तत्व परिवर्तनशील है, इसलिये नष्ट होते हैं। ब्रह्माण्ड को भी अनादि कहते हैं किन्तु उसका विस्तार होता जाता है, फैलता जा रहा है। इस तीन-लोकों के ब्रह्माण्ड को 'बेअंत' कहा गया अर्थात् जिसका कोई अंत नहीं। पर, ये अनादि 'सअंत' है; एक दिन में भी खत्म हो जाएगा। आइए बताता हूँ — कैसे? इस ब्रह्माण्ड का विस्तार एक मिनट में एक-करोड़ अस्सी लाख किलोमीटर हो रहा है। ये फैलता जा रहा है बढ़ता ही जा रहा है। दुनिया में हर चीज बढ़ रही है।... जो कुछ भी बढ़ेगा, खत्म हो जाएगा। वृक्ष बढ़ता जाता है बढ़ता जाता है, पर्वत भी बढ़ते जाते हैं। बढ़ने की एक सीमा होती है, पराकाष्ठा होती है, बढ़ने के बाद कम होना शुरू होता जाता है। आप कहेंगे, वाह महाराज किसी वृक्ष को छोटे होता नहीं देखा। होता है — उसकी पत्तियाँ पहले से कम होती जायेंगी, उसकी टहनियाँ सूखती जाएँगी। धीरे-धीरे वो खोखला होता जाएगा। क्यों? क्योंकि उसकी जड़ों में अपना भोजन खींचने की ताकत नहीं रहती। हिमालय पर्वत का शनैः-शनैः क्षरण शुरू हो गया है। जीवात्मा 'अमर' है क्योंकि वो तत्वों से रहित है, परमपुरुष का अंश होने से स्वयं शक्ति है। 'आत्मा' परमपुरुष का ही 'सुरति' रूप है।

चारों तरह की मुक्तियों — सामीप्य, सालोक्य, सायुज्य, सारूप्य में भी आत्म साक्षात्कार यथार्थ में नहीं है। स्वर्गादि लोकों में भी सूक्ष्म शरीर है। ब्रह्मादि पदों के पश्चात् भी पुनर्जन्म है, आत्म साक्षात्कार नहीं है।

आत्मा और 'हँस' में अन्तर है। ये अन्तर क्यों है? कबीर साहिब ने 'आत्मा' को भ्रम बोला। जिस समय ये चेतन सत्ता शरीर को धारण करती है तो उसको जीव कहते हैं। अर्थात् प्राणों को धारण करने वाली आत्मा को जीव कहते हैं। 'प्राणेन्द्र धरितजीवेषु'।

जब आत्मा प्राणों को त्याग कर 'मन' में समाती है तो इस आत्मा को

‘ब्रह्म’ कहते हैं। उस अवस्था में भी मन होता है। जब ये आत्मा पंच भौतिक तत्वों और ‘मन’ से बाहर निकल जाती है तब इस आत्मा को संतों ने ‘हँस’ की संज्ञा दी है।

इसी कारण ‘अध्यात्म-शक्ति’ के अन्दर में चलने को समझाते हुए साहिब की वाणी है —

मौको कहाँ ढूँढे रे बन्दे, मैं तो तेरे पास में ॥  
न मैं जप में न मैं तप में, नहीं व्रत उपवास में ॥  
क्रिया कर्म में मैं नहीं रहता, नहीं योग सन्यास में ॥  
न मैं काशी न मैं मथुरा, न काबै कैलाश में ॥  
खोजी होय तुरत मिल जाऊँ, इक पल की तलाश में ॥  
मैं रहता तेरे पास में ॥

‘सुरत’ ही आत्मा की शक्ति है। सुरति से ही सद्गुरु मनुष्य को पुनः उत्पन्न करता है, आत्मा को उसकी विस्मृत शक्ति का स्मरण कराता है। ऐसी सत्यपुरुष शक्ति से युक्त सत्यभक्ति करने वाले भक्त को फिर सत्यधाम जाने से कालपुरुष नहीं रोक सकता। सद्गुरु के शरणागत हुआ शिष्य विश्वास से भरा हुआ रहेगा। यही सुरक्षा और विश्वास मैंने अपने शिष्यों को दिया है।

**पुरुष शक्ति जब आन समाई। फिर न रोके काल कसाई ॥**

साहिब ने बड़े निराले देश — निज सत्यलोक की राह और युक्ति बताई, जहाँ जन्म नहीं है, मृत्यु नहीं है। वहाँ भूख नहीं है, प्यास नहीं है। मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार नहीं है।

यक रूप सभी हैं न खुदा बंद न बंदा।  
उस मंजिले नजदीक नहीं काल का फंदा।  
सब हँस पुरुष रूप हैं, सब उनके दुलारे।  
चल हँसा अचल मोलीदो मवाय हमारे ॥



# शरीर से कैसे निकलें

---

यह पूरा ब्रह्माण्ड इस शरीर के अन्दर विद्यमान है। पर पता नहीं चल रहा है। यह कौतुक है। साहिब कह रहे हैं—

**जहँ जाना तहँ निकट है, रहा सकल घटपूर।**

**बाड़ी गर्व गुमान से, ताते पड़ गयो धूर॥**

कह रहे हैं कि सारे घट परिपूर्ण है। कहीं ये किताबी बातें तो नहीं हैं? नहीं, इनमें रहस्य है। ये रहस्य महापुरुषों की वाणी से झलकता है। साहिब कह रहे हैं—

**कर्म और धर्म संसार सब करत है, पीव की परख कोई संत जाने॥**

बाहरी तौर पर उसकी खोज दुनिया कर रही है, पर उसकी परख कोई संत ही जानता है। क्योंकि दुनिया उस परम पुरुष का भेद ही नहीं जानती है और काल पुरुष को ही परम पुरुष मान कर उसे पूज रही है। फिर सबका खोजने का तरीका भी सही नहीं है।

**वस्तु कहीं ढूँढ़े कहीं, केहि विधि आवे हाथ।**

**कहैं कबीर भेदी लिया, पल में देत लखात॥**

वस्तु कहीं पर हो और ढूँढ़ें कहीं ओर तो कैसे मिलेगी! पर जब भेदी मिल जाता है तो पल में बता देता है। वो कह रहे हैं—

**सुरति और निरति मन पवन को पलट कर,  
गंग औ यमुन के घाट आनै।  
कहैं कबीर सो संत निर्भय हुआ, जन्म औ मरण का भ्रम भानै॥**

यह सुरति कहाँ पर है? यह निरति कहाँ पर है? देखते हैं। कुछ लोग सुरति और निरति की व्याख्या मनमाने तरीके से कर रहे हैं। वो कह

रहे हैं कि सुरति सुनने की ताकत को कहते हैं और निरति देखने की ताकत को। सुरति और निरति में बड़ा अन्तर है। हमारी चेतन शक्ति की दो अवस्थाएँ हैं, दो अंग हैं, दो रूप हैं। एक है—सुरति। इस सुरति में ही देखने, सुनने और समझने की शक्ति है। आप देखना कि, सुनना और समझना सब ध्यान से ही होता है। ध्यान हट जाए तो कुछ भी संभव नहीं है। ये ताकतें हमारे ध्यान के अन्दर निहित हैं। फिर जो हमारी चेतना का दूसरा अंग निरति है, वो क्या चीज है? यह निरति हमारी चेतना का वो अंग है, जिससे हमारे शरीर के पूरे अंग क्रियाशील हो रहे हैं। यही तो फँसी है।

**पाँच को नाथ कर, साथ सोहं लिया।**

**अधर दरियाव का सुख माने॥**

पाँच प्राण हैं और पाँच उपप्राण हैं। अपान, समान, उदान, प्राण, सर्वतनव्याम। पाँच उपप्राण हैं। पाँचों को साथ ले लिया। मूल स्वांसा साथ ली। भाइयो, ये कैसे साथ ले लिये? इड़ा और पिंगला को लय कर लिया। ये दोनों लय होने के साथ ही सुषुम्ना नाड़ी खुल जाती है। इड़ा चंद्र नाड़ी कहलाती है, पिंगला सूर्य नाड़ी। दोनों ही लय हो जाती है।

**इड़ा पिंगला सुषुम्ना सम करे।**

**अर्द्ध और उर्द्ध विच ध्यान लावै॥**

इड़ा व पिंगला दोनों को समान कर दिया और पिंगला में इड़ा लय कर दी, सुषुम्ना नाड़ी खोल दी। पाँचों प्राण सुषुम्ना में समा गये। पाँचों को नथ लिया। 'साथ सोहं लिया।' 10 सोहंग हैं। जीव को सोहंग भी कहते हैं। इस निरति को भी सोहं कहते हैं अर्थात् उर्द्धमुखी कर दिया।

**गंग और यमुन के घाट आने।**

ये क्या हैं गंगा-यमुना? गंगा बाई नाड़ी और यमुना दाई नाड़ी को कहते हैं। इन दोनों का घाट सुषुम्ना का सिरा है।

**कहैं कबीर सो संत निर्भय हुआ, जन्म औ मरण का भ्रम भानै॥**

सुषुमता में लय होने से जन्म और मरण के भ्रम टूट जाते हैं। इस देह में खेल ही पूरा केवल नाड़ियों और स्वांसों का है। पवन का पूरा खेल है।

साधक को इस अवस्था में सुषुम्ना का आभास होने लगता है। इस सुषुम्ना का जिक्र वाणियों में आ रहा है।

**इड़ा पिंगला सुखमन बूझो, आपे अलख लखावे।  
उसके ऊपर साँचा सतगुरु, अनहद शब्द सुरति समावे॥**

आखिर यह सुषुम्ना नाड़ी बड़ी कोमल नाड़ी है। जब निद्रा अवस्था में साधक पहुँचता है तो एक नाड़ी में प्रवेश करता है। कंठ की बाईं तरफ। इस मानव तन के अन्दर बड़ा कौतुक है। वो नाड़ी रोम से एक हजार गुणा बारीक है। उसमें प्रवेश करता है और स्वप्न की दुनिया में पहुँच जाता है। तीसरे तिल का उल्लेख भी वाणियों में आता है।

**खसखस के दाने के अन्दर, शहर खुदा का बसता है।  
कस्त करे ऐनों के तिल में, वहीं से उसका रस्ता है॥**

यह सुषुम्ना नाड़ी अत्यंत सूक्ष्म नाड़ी है। इस नाड़ी में पहुँचते ही एक ध्यानावस्था बन जाती है। पर साधक वहाँ कैसे जाए? साहिब वाणी में कह रहे हैं—

**पाँच को नाथ कर, साथ सोहंग लिया।**

**सुरति और निरति मन पवन को पलट कर,**

**गंग औ यमुन के घाट आने॥**

सुरति और निरति को पलटें कैसे? समस्या गंभीर है। कई लोग आकर कहते हैं कि महाराज, जब ध्यान करते हैं तो मन नहीं टिकता है।

**सुखमन मध्ये बसे निरंजन, मूँधा दसवां द्वारा॥**

यह सुरति पर सवारी करके ही तो मन जाता है। सुरति की ताकत के बिना मन की मूवमेंट नहीं हो सकती है। यह सुषुम्ना नाड़ी अत्यंत स्पन्दनशील है। पूरे शरीर की चेतना इसी के द्वारा आ रही है। यह परम चेतन है। पर यह सुप्त अवस्था में है। इसके अन्दर ब्रह्माण्डीय खेल



भरे पड़े हैं। यह जाग जाए तो बड़े रहस्य बता देगी।

क्यों भटकता फिर रहा है तू तलाशो यार में,  
रास्ता शाहरग में है दिलबर पे जाने के लिए।  
पर मुर्शिदे कामिल से मिल, सिदब औ सबूरे से तकी,  
वो तुम्हें देगा फहम, शाहरग में जाने के लिए॥

जब हम सुषुम्ना नाड़ी में आगे चलते हैं तो मन उसी अवस्था में मूर्छित होता है और तभी तुरीया अवस्था बनती है। जीव जब मन से पूरा निकल जाता है, तब तुरीयातीत अवस्था बनती है। बड़े रहस्य हैं। पर मन तुरीया में जाने नहीं देता है। मन और माया की कोशिश है कि हर इंसान को इस जाग्रत अवस्था में रखकर भौतिक चीजों में उलझाकर रखे। वर्तमान में जो भी आप देख रहे हैं, सब सपना है। जैसे हम सब नींद में कुछ देखते हैं, सत्य लगता है। पर होता नहीं है सत्य। पर यह निद्रा अवस्था का खेल है। निद्रा अवस्था के कारण जो भी दृश्य देखे, वो सब नित्य और सत्य लगते हैं। पर वो हैं भ्रमांक, हैं असत्य। उनका आभास कब होता है, जब हम जाग्रत अवस्था में आते हैं। तब हम जान जाते हैं कि वो तो स्वप्न था। इस तरह वर्तमान में जो कुछ भी हम अनुभव कर रहे हैं, वास्तव में यह सब भी स्वप्न है। इसीलिए संसार को तत्त्ववेत्ताओं ने, ज्ञानियों ने स्वप्नवत् कहा। साहिब भी कह रहे हैं—

**जगत है रैन का सपना॥**

यह दुनिया एक स्वप्न है। और नानक देव जी भी वाणी में कह रहे हैं—

यों सुपना पेखना, जग रचना तिम जान।  
इसमें कछु सांचो नहीं, यह नानक सांची मान॥

वो अवस्था के कारण से सच लगता है, पर है नहीं। इसी तरह जाग्रत अवस्था भी अज्ञानमयी है। यह इड़ा पिंगला नाड़ी के संयोग से है। हालांकि शरीर की नौ नाड़ियाँ काम करती हैं, जिसमें इड़ा पिंगला प्रमुख

होती हैं। तुरीया में सुषुम्ना नाड़ी प्रमुख होती है। पर क्या यह अमर है? नहीं। जब गोरखनाथ से साहिब की गोष्ठी हुई तो कहा—

**इड़ा विनशे पिंगला विनशे, विनशे सुखमन नाड़ी।**

**कहैं कबीर सुनो हो गोरख, कहाँ लगाइहों ताड़ी॥**

क्योंकि गोरखनाथ भी सुषुम्ना में प्रवेश लेते थे। कुछ कहते हैं कि योगी लोग छठे चक्र तक जाते हैं और संत लोग सातवें चक्र का भेद प्राप्त करते हैं। नहीं, संत लोग आठवें चक्र से प्रारंभ होते हैं। इस काया के अन्दर सात चक्र हैं। मूलादार चक्र गुदा स्थान पर है; स्वादिष्ठान चक्र शिशन इन्द्री पर, जहाँ ब्रह्मा जी का वास है, मणिपूरक चक्र नाभिदल में; अनहद चक्र हृदय में, विशुद्ध चक्र कंठ में, जहाँ आदि शक्ति का वास है; आज्ञाचक्र, जहाँ आत्मा का वास है; सहस्रसार चक्र, जहाँ निरंजन का वास है। यहीं से सुषुम्ना का प्रारंभ होता है। ये सात चक्र हैं। योगी लोग प्राणों का निरोध छह चक्रों तक करते हैं। वो भृकुटी के मध्य में आकर एकाग्र हो जाते हैं। योगेश्वर सप्तम चक्र तक जाते हैं और संतों ने आठवें की बात की, गुरु नानक देव जी कह रहे हैं—

**आठ अटाकी अटारी मजारा, देखा पुरुष न्यारा।**

अष्टम चक्र शीश से सवा हाथ ऊपर है।

इस तरह सुषुम्ना नाड़ी भी हमें नित्य की तरफ नहीं ले जा सकती है। पर हाँ, वो रास्ता है, पराकाष्ठा नहीं है। साहिब ने जब गोरखनाथ से बात की तो गोरखनाथ सुषुम्ना नाड़ी पर ही केंद्रित हो रहा था। तो साहिब ने कहा—

**इड़ा विनशे पिंगला विनशे, विनशे सुखमन नाड़ी।**

**कहैं कबीर सुनो हो गोरख, तब कहाँ लगाइहो ताड़ी॥**

अर्थात् इड़ा पिंगला तो नाशवान हैं ही, पर सुषुम्ना भी नाशवान है। आँखें भी नाशवान हैं, पर काम तो ले रहे हैं। गुरु का दर्शन भी इन्हीं आँखों से कर रहे हैं। इसी तरह महापुरुषों ने सुषुम्ना नाड़ी से कार्य लेने

की बात की, पर यहीं तक सीमित नहीं रहना है। वो नष्ट हो जाएगी। जब-जब इड़ा पिंगला में लय होने लगती है तो साधक को यूँ लगता है कि उसकी स्वांसा बंद हो गयी। बहुत से लोग यहाँ डर जाते हैं। जब भी स्वांस इड़ा पिंगला से लेते हैं तो स्वांसा नाभि दल में पहुँचती है। जब भी सुषुम्ना नाड़ी खुलेगी, स्वांस उर्द्धमुखी हो जाएगी। स्वांस नाभि में गिरती है तो शरीर चेतन हो जाता है। क्योंकि स्वांस में आत्मा का वास है, इसलिए स्वांस को भी सोहं कहा, जीव को भी सोहं कहा, माया को भी सोहं कहा।

आओ, हम देखते हैं कि जब यह उर्द्धमुखी हो जाती है तो कपाट चेतन हो जाता है। यही जब नाभि में आती है तो देही चेतन हो जाती है। क्योंकि इसके अन्दर आत्मा का वास है।

**स्वांस सुरति के मध्य में, कभी न न्यारा होय।  
ऐसा साक्षी रूप है, सुरति निरति से जोय॥**

आओ, जीते-जी मरने की बात बताता हूँ।

**मरते मरते जग मुआ, मरन न जाना कोय।  
ऐसी मरनी न मरा, बहुरि न मरना होय॥**

भाईयो, आत्मा को यमराज कैसे पकड़ लेता है! आत्मा तो पकड़ में आने वाली नहीं है। उसका कोई गला नहीं है, उसकी कोई टाँग नहीं है। उसका कोई नाक नहीं है कि रस्सी बाँध कर ले जाये। आओ, बताता हूँ कि यमराज कैसे पकड़कर ले जाता है। हमारे शरीर की उर्जा है प्राण। हमारे शरीर की उर्जा है स्वांस। हम सब स्वांस ले रहे हैं। साहिब ने कहा— 'सोहं से कर प्रीत॥'

स्वांस को सोहं कहा। इसमें अपना ध्यान लगाना।

**स्वांस सुरति के मध्य में, कभी न न्यारा होय।  
ऐसा साक्षी रूप है, सुरति निरति से जोय॥**

दुनिया सोहं सोहं जपने लग गयी। जो हम स्वांस ले रहे हैं,

वह नाभि तक जाती है। वहीं से 10 वायुओं में बदलती है। आज्ञाचक्र में बैठकर आत्मा स्वांस ले रही है और नाभि तक पहुँचा रही है। एकाग्र होकर देखना, तब पता चलेगा कि एक चेतना स्वांस ले रही है। क्यों? क्योंकि आत्मा ने अपने को शरीर माना। प्राणों के बिना शरीर का संचालन नहीं है। इसलिए लगातार आत्मा यह काम कर रही है। यमदूत आत्मा से छेड़ाछाड़ी नहीं करता है। वो प्राणों को पकड़ता है और खींचता ले जाता है। तो आत्मा पीछे जाती है, कहती है कि कहाँ ले जा रहे हो प्राण! गाय ऐसे घर से कहीं नहीं जाती, लेकिन बछड़े को आगे करो तो उसके पीछे-पीछे हो लेती है। इस तरह आत्मदेव प्राणों के पीछे चलने लगता है। इस तरह यमदूत मारता है। यह है मौत। वो धीरे-धीरे प्राण खींचता है। जैसे बाहर होते हैं, शरीर ठंडा हो जाता है। आत्मा को नहीं पकड़ पाता है। इस तरह आत्मा भ्रमवश जाती है। यह काम जीते जी खुद करो। इसी को साहिब ने कहा—

मरते मरते जग मुआ, मरन न जाना कोय।

ऐसी मरनी न मुआ, बहुरि न मरना होय॥

इसका मतलब है कि हमारे शरीर का खेल प्राण से चल रहा है। हम ऊपर से लेकर नाभि में पहुँचा रहे हैं। यहाँ मत पहुँचाओ।

पवन को पलट कर, शून्य में घर किया।  
धर में अधर भरपूर देखा।  
कहैं कबीर गुरु पूरे की मेहर से, त्रिकुटी मध्य दीदार देखा॥

यह स्वांस पलट दी जाती है। कैसे? सुरति से। इसलिए सुमिरन के लिए कहा।

जप तप संयम साधना, सब सुमिरन के माहिं।

कबीर जानत संतजन, सुमिरन सम कछु नाहिं॥

अरे हाँ रे पलटू, ज्ञान भूमि के बीच चलत हैं उलटी स्वांसा॥

स्वांस सुरति के मध्य में, कभी न न्यारा होय॥

अर्थात् स्वांस और ध्यान के बीच में साहिब मिल जाएंगे।

ऐसा साक्षी रूप है, सुरति निरति से जोय॥

सुरति को निरति से जोड़ लो। वो मिल जाएंगे। जैसे स्वांस पलट दी ध्यान से। आगे कह रहे हैं—

स्वांस सुरति इक डोरी लाय। अजर अमर होय लोक सिधाय॥

सुरति और निरति मन पवन को पलट कर,

गंग औ यमुन के घाट आने॥

तीन चीजों को पलटना बोल दिया। अब हमारी निरति कहाँ है? हमारी निरति का अंश स्वांसा में मिला। स्वांसा कहाँ है? नौ नाड़ियों में गयी। नौ नाड़ियाँ कहाँ हैं? इड़ा, पिंगला, मलवाहिनी आदि हमारे शरीर की नाड़ियाँ अर्द्धमुखी हैं। एक नाड़ी है उर्द्धमुखी। वो है—सुषुम्ना। बाकी आठों नाड़ियों का झुकाव शरीर की तरफ नीचे है। इन्हीं में स्वांस दौड़ रही है और स्वांसा में आत्मा का वास है। इसलिए आत्मा नाड़ियों में रम करके शरीर में रम गयी है। जब सुषुम्ना खुलती है तो पूरी पवनें उठकर सुषुम्ना में आती हैं। अब एक सवाल उठा कि तीनों को कैसे पलटें?

सुरति औ निरति मन पवन को पलट कर...॥

निरति तो नाभिदल से पूरे शरीर में समा गयी। सभी चक्रों में आई। सुरति जाग्रत में आँखों में रहती है। लेकिन आप देखना कि जागता, सोता हुआ आदमी भी वहाँ होता है, जहाँ उसकी सुरति चली गयी। फिर वहाँ कुछ दिखाई कम पड़ेगा, जहाँ उसका शरीर होगा। अब जहाँ सुरति चली गयी, वही दृश्य दिखेंगे। आपका ध्यान अगर घर में चला गया तो घर का दरवाजा दिखने लगेगा, घर का आंगन दिखने लगेगा। इसका मतलब है कि हमारी सुरति मन के बीच में है। मन माया में और पंच भौतिक तत्वों में रमा हुआ है। तीनों को मोड़ना है।

सुध कर हंसा अपने देश॥

बस—

सुरति संभाले काज है, तू मत भरम भुलाय ॥

भाइयो—

ताको काल क्या करे, जो आठ पहर हुशियार ॥

आप अपने में आत्मनिष्ठ हो जाओ।

पलट वजूद में अजब विश्राम है, होय मौजूद तो समझ आवै ॥

जब सुरति एकाग्र हो जाती है आप स्वमं रोशन हो जायेंगे। चेतन हो जायेंगे। मन सुरति को लेकर दौड़ रहा है, इसलिए अन्दर की दुनिया में जाना मुश्किल हो रहा है। चार चीजें काबू नहीं आ रही हैं। ये हैं सुरति, निरति, मन तथा स्वांस। इसलिए साहिब कह रहे हैं—

सुरति औ निरति मन पवन को पलट कर, गंग औ यमुन के घाट आने।

अब इन चारों को कैसे काबू करें?

सुरति के दंड से घेर मन पवन को, फेर उलटा चले।

धर औ अधर विच ध्यान लावै।

कहैं कबीर संत निर्भय हुआ, जन्म औ मरण का भ्रम भावै ॥

महायोगेश्वरों में साहिब का स्थान उत्तम है। जैसे नदियों में गंगा का स्थान उत्तम है, इस तरह ज्ञानियों में साहिब का स्थान बहुत उत्तम है। जैसे सौरमंडल में सूर्य का स्थान सभी नक्षत्रों, तारों से उत्तम है, इसी तरह ज्ञानियों में साहिब का स्थान बहुत उत्तम है।

तो आइए, हम देखें कि ये काबू नहीं आ रहे हैं। न मन, न सुरति, न निरति, न स्वांसा। स्वाभाविक हमारी स्वांसा का प्रवाह नाभि की ओर है। साहिब कह रहे हैं कि चारों को पकड़ना और मनुष्य चारों की साधना नहीं जान पा रहा है। बिना इन चारों को साधे सुषुमना नाड़ी नहीं खुलेगी और जब तक सुषुमना नाड़ी नहीं खुलेगी तब तक अन्दर की दुनिया उसे पता भी नहीं चलेगी। पर जब वो खुल गयी तो ब्रह्माण्ड के पूरे रहस्य, ब्रह्माण्ड के पूरे खेल दिखेंगे। अब सुरति का रुझान बाहरी दुनिया में है।

सुरति भागती रहती है। इनको विधि पूर्वक पकड़ना होगा। आप देखते हैं कि आपके न चाहने के बावजूद भी सुरति जगत के पदार्थों की तरफ भाग जाती है। कभी आप फैसला करके बैठते हैं कि आज मैंने ध्यान ठीक से करना है, एकाग्र होना है। अगले पल क्या होता है कि आप सो जाते हैं, आप हताश हो जाते हैं या आपका ध्यान कहीं ओर निकल जाता है। आप बैठे रहते हैं केवल। इसका मतलब है कि ध्यान पर बिलकुल भी कंट्रोल नहीं है। जब आप ऐसे ही बैठे हैं, एकाग्र नहीं है तो आपको कुछ भी मिलना नहीं है। जब कुछ नहीं मिला तो अरुचि आती है। क्यों नहीं मिला? वाह, वही बात हुई। एक बार एक मौलवी साहब से गुरुनानक देव जी की गोष्ठी हो रही थी। काफी देर बातचीत हुई। बाद में मौलवी साहब ने कहा कि भाई नानकशाह जी, अभी हम नमाज अदा करेंगे। नानकदेव जी ने कहा कि मौलवी साहब, हम भी नमाज अदा करेंगे (प्रार्थना कहो, नमाज कहो, आरती कहो) दोनों बैठ गये। नमाज करने लगे; एकाग्र हुए। 10-15 मिनट बाद जब उठे तो नानक देव जी ने कहा कि मौलवी साहब, आप तो ध्यान में घोड़ी बाँध रहे थे। मौलवी साहब चौक गये। क्योंकि जो मन का निग्रह करना जानते हैं, वो किसी की मानसिकता में भी प्रवेश कर सकते हैं, घट में भी। गुरु नानकदेव जी ने चक्र शोधन से उनके अन्तःकरण में प्रवेश करके देखा कि इनका चिंतन क्या हो रहा है। मौलवी चौका, कहा—नानकशाह जी, आपको कैसे पता चला कि मैं क्या सोच रहा था? सही बात है, मेरी घोड़ी है, उसने अभी-अभी बच्चा दिया है। जब मैं नमाज कर रहा था तो मेरा ध्यान उस तरफ था। मैं सोच रहा था कि बच्चे को दूध पिलाना है। मैं सच मुच घोड़ी को बाँध रहा था। मेरा ध्यान उसी तरफ था।

इसका मतलब है कि जब भी आप ध्यान में बैठते हैं तो आपका चिंतन इस प्रकार होता है। जिन-जिन चीजों में आपका चिंतन होता है, आपकी सुरति, आपकी आत्मा उनमें चली जाती है। मनुष्य उनमें रम

जाता है, उनमें लय हो जाता है।

यह चिंतन आप खुद नहीं कर रहे हैं। यह चिंतन मन की देन है। मन सुषुम्ना में बैठा है। यहीं से तरंगें दे रहा है शरीर को। इसलिए शरीर का संचालक मन है, ठीक है। आत्मा नहीं है। आत्मा तो उर्जा दे रही है। इसलिए पकड़ी जा रही है। संचालक मन है।

**सुखमन मध्ये बसे निरंजन, मूँधा दसवां द्वारा॥**

यहाँ से तरंगें देता है। जब ये तरंगें देता है, तब हमारा मस्तिष्क क्रियाशील होता है। मस्तिष्क स्वयं नहीं चल रहा है। इस तरह पूरा शरीर चल रहा है। यहाँ से वो फौरन याद दिलाएगा कि फलाने ने यूँ कहा था। यहीं से इच्छाओं की तरंगें देता है। तरंग के आने मात्र से मस्तिष्क सोचने लग जाता है, लड़की का विवाह करना था। बस, आपका ध्यान उधर गया तो स्वांस फिर नाभि में आ जाएगी और शारीरिक चेतन अवस्था बरकरार रहेगी। इस तरह आत्म देव को ऊपर नहीं जाने दे रहा है।

**सुखमन मध्ये बसे निरंजन, मूँधा दसवा द्वारा॥**

इस तरह वो भजन नहीं करने दे रहा है। उसको डर है कि अगर आप चेतन होकर निकल गये तो बाकी को भी निकाल लोगे। अगर आपके पास 1 करोड़ रूपया है तो आप हजार रूपया भी चूल्हे में डालना चाहोगे क्या? नहीं न! इस तरह निरंजन एक जीव भी छोड़ना नहीं चाहता है। इस दुनिया को चलाना है उसने।

तो भाइयो, ये काबू नहीं आते हैं। इनकी एक विधि है।

**जहँ जाना तहँ निकट है, रहा सकल भरपूर।**

**बाड़ी गर्व गुमान ते, ताते पड़ गयो धूर॥**

अब सुरति कैसे पकड़ें? चारों चीजें काबू नहीं हो रही हैं। कबीर साहिब की गोरख से गोष्ठी हुई तो गोरखनाथ ने पूछा—

**कबीर काया मध्ये सार क्या?**

साहिब ने कहा—



काया मध्ये स्वांसा सार।

गोरखनाथ ने फिर पूछा—

कहाँ से स्वांसा उठत है, कहाँ को जाय समाय॥

कहा—

शून्य से स्वांसा उठत है, नाभिदल में आय॥

फिर पूछा—

हाथ पाँव इसके नहीं, कैसे पकड़ी जाय॥

साहिब ने कहा—

हाथ पाँव इसके नहीं, यह सुरति से पकड़ी जाय॥

पक्का, यह सुरति से पकड़ में आएगी। सुरति अगर एकाग्र है तो स्वांसा कहीं से भी टस-से-मस नहीं हो सकती है। जब तक स्वांसा चलेगी तो उसका रास्ता बना हुआ है। वो शून्य से नाभि में ही आएगी।

**प्राण धरेत जीवेशू॥**

अगर नाभि में स्वांस आ रही है तो आप पक्का प्राण हो जायेंगे। क्योंकि स्वांस में ही आत्मा का वास है।

**स्वांस स्वांस प्रभु सुमिर ले, वृथा स्वांस न खोय।**

**न जाने किस स्वांस में, आवन होय न होय॥**

स्वांस सुरति से पूरी कंट्रोल में आ जाएगी।

**ऊँची तानो सुरति को, तहाँ देखो पुरुष अलेख॥**

साहिब की वाणी में बड़े रहस्य हैं। यह सुरति दुनिया में घूम रही है। इसे आज्ञाचक्र से अष्टमचक्र में ले जाना है। यह कैसे? गुरु के ध्यान से ताकत मिल जाती है। सुरति एकाग्र हो जाएगी। गुरु कृपा से ही सम्भव हो पाएगा।

**सुरति से मन लाइए, ज्यों गागर पनिहार।**

**हाले डोले सुरति में, कहैं कबीर विचार॥**

माताएँ-बहनें रेगीस्तान में जब पानी भरने जाती हैं तो कुएँ बहुत

दूर-दूर होते हैं। आपस में बातचीत करती हैं, पर अपना ध्यान घड़े पर ही रखती हैं। सिर पर घड़ा, घड़े के ऊपर घड़ा, उस पर भी घड़ा। हाथ ऊपर नहीं पहुँच सकता है। सुरति से घड़ा रोका हुआ है। इसका मतलब है कि सुरति में पकड़ने की ताकत भी है। सुरति एकाग्र होगी तो उस पर स्वांसा चलेगी। दोनों चीजें एक होंगी।

**स्वांस सुरति के मध्य में, कभी न न्यारा होय॥**

इन दोनों के बीच में।

**ऐसा साक्षी रूप है, सुरति निरति से जोय॥**

अब निरति कैसे काबू आएगी? स्वांसा में निरति है। निरति सिमटती जाएगी। स्वांस जहाँ जा रही है, निरति उसी के साथ जाएगी। जो एक क्रिया शरीर में चल रही है, यही तो है निरति। अब यह निरति एकाग्र हो जाएगी। जब निरति स्वांस के साथ चली तो यह कंट्रोल हो गयी। जैसे निरति कंट्रोल हो जाएगी, शरीर खाली लगेगा। साधक को ऐसा लगेगा कि मेरा शरीर ही नहीं है। साधक को ऐसा आभास होगा कि मैं देही नहीं हूँ। क्योंकि शरीर का आभास निरति की शक्ति से है। निरति स्वांस में है और स्वांस नौ नाड़ियों में आकर शरीर में बिखर गयी। अब धीरे-धीरे स्वांसा सिमटती जाती है। जैसे आदमी टाँगों पर चलता है। यदि टाँगें बाँध दीं तो चल ही नहीं पाएगा। इस तरह सुरति भी बाँध गयी, निरति भी बाँध गयी, पवन भी बाँध गयी तो मन बाँध जाएगा। अब मन समझ में आने लगेगा। ठीक है। रहस्य यहाँ है। ऐसे कोई कितनी भी कोशिश करे, मन को नहीं जान पाएगा। पर यहाँ मन समझ में आ जाएगा। जैसे मकड़ी अपनी तार पर चलती है, इस तरह सुरति पर स्वांस चलती है। सुरति अत्यंत मकरतार की तरह है। अष्टम चक्र में जुड़ी तो उसी पर स्वांस का आना-जाना होता है।

**मकरतार के भेद को, जानत संत सुजान॥**

धीरे-धीरे स्वांस ऊपर जाने लगती है। चारों चीजें इकट्ठा हो

जाती है। यह किससे हुई? सुरति से। इसलिए कह रहे हैं—

**सुरति के दंड से, घेर मन पवन को॥**

सुरति के डंडे से हुआ यह सब। यहीं पर साहिब कह रहे हैं—

**तन थिर मन थिर वचन थिर, सुरति निरति थिर होय।**

**कहैं कबीर उस पलक को, कल्प न पावे कोय॥**

शरीर भी स्थिर हो गया, मन भी स्थिर हो गया, संकल्प-विकल्प भी स्थिर हो गये, सुरति और निरति भी स्थिर हो गयी। वो एक पल कल्पों की साधना से भी अधिक हो जाती है। कल्पांतर की साधना भी उस पल की तुलना नहीं कर सकती है। साधक अपने अन्दर बड़ी दिव्य अनुभूतियाँ अनुभव करने लगता है। धीरे-धीरे स्वांस सिमटती जाएगी। इड़ा पिंगला में लय हो जाती है। सुषुम्ना नाड़ी से स्वांसा ऊपर जा रही है। जितनी शरीर की उर्जा या चेतना थी, स्वांसा में थी। स्वांस ही सिमटती गयी तो पूरी उर्जा उर्द्धगामी हो गयी।

**अरे हाँ रे पलटू, चार अंगुल में आय जाय सो योगी है॥**

अब यह स्वांसा सिर्फ चार अंगुल तक चलती है। ऊपर की तरफ स्वांसा चलती जाएगी।

**पवन को पलट कर, शून्य में घर किया॥**

यह शून्य में घर किया। उलटा चला। केवल स्वांस ही बन जाओ। केवल स्वांस बनने का मतलब है कि स्वांसा में स्थायी निवास ले लो। स्वांस ऊपर की ओर चलने लगी तो चारों चीज इकट्ठा हो गयीं। साधक को ऐसा लगेगा कि मेरी स्वांसा खत्म हो रही है। ऐसा आभास होगा कि अभी मर रहा हूँ। अब यहाँ मन ध्यान को बाँटेगा। इस समय ध्यान दुनिया की चीजों में नहीं जाएगा। एक चीज की तरफ जाएगा। यहाँ भी मन क्रियाशील है। मन डराएगा कि मृत्यु हो रही है स्वांस खत्म हो रही है। कभी-कभी साधक खुद चाहता है कि उसकी स्वांस नाभि में आए। खुद ध्यान करता है, खुद कल्पना करता है। जैसे उसका ध्यान और

स्वांस नीचे आई, पूरा खेल खत्म हो जाता है। यहाँ मन की जीत हो गयी यदि साधक यहाँ नहीं डरता और अपना ध्यान अष्टम चक्र पर टिकाये रखता है पूर्णतः आत्मनिष्ठ हो जाता है और अन्तरीया दुनिया देखता है। यह क्रिया जीते-जी मरने की क्रिया कहलाती है।

जीवत मरिए भवजल तरिए॥

मरते मरते जग मुआ, मरण न जाना कोय।

ऐसी मरनी न मुआ, बहुरि न मरना होय॥

जा मरने से जग डरे, मेरे मन आनन्द।

कब मरहुँ कब पाहुँ, पूरण परमानन्द॥

यह है—‘मृत्युमाअमृतगम्य॥’

मृत्यु के अन्दर से होकर अमृतत्व की तरफ चलना है।

‘तामसमाज्योतिर्गम्य॥’

यह क्या है? कपाट के अन्दर अन्धकार भरा पड़ा है। और जब तक आप इस अन्धकार के अन्दर हैं, तब तक मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार आदि समझ में नहीं आयेंगे। अँधेरे में कोई भी चीज़ परखी नहीं जाती है। जैसे आप इस अन्धकार से बाहर निकलते हैं तो आगे प्रकाश है। यह है—‘मृत्युमाअमृतगम्य’। यह मृत्यु से अमृतत्व की तरफ कैसे चलना है? जो स्वांसा को शरीर से निकालना है, यह है जीवत मरना। इस तरह मृत्यु के अन्दर से निकलकर अमृतत्व की तरफ चलना है। वाह, इस शरीर में बड़े रहस्य भरे पड़े हैं। अब साधक धीरे-धीरे सिमटता जाता है। यहाँ आपके मन की एक जीरो बन जाएगी। यहाँ साहिब कह रहे हैं—

नुकते के हेर फेर से खुदा से जुदा हुआ।

नुकता पलट कर एक किया तो खुद खुदा हुआ॥

पूरा मामला ही वहाँ रुक जाता है। न मन, न बुद्धि, न चित्त, न अहंकार। ये सब सिमट गये ध्यान रहे कि यहाँ पर भी मन एक्टिव है। यहाँ पर आपके मन में कल्पना आएगी कि आखिर शरीर कैसा होता है!

आपमें रोमांच और रहस्य आएगा। आप दोबारा शरीर का सिस्टम देखना चाहोगे। मन यहाँ विवश करेगा, कहेगा कि तुम ख़तरनाक रास्ते की तरफ चल रहे हो, तुम्हारी सब चीज़ें सीज हो चुकी हैं, तुम अज्ञानमय रास्ते पर हो, यह तुम्हारी साधना उचित नहीं है, यह तो मौत हो रही है, तुम गफलत में हो, तुम्हारी तो शून्य अवस्था में मौत हो रही है। मन बहुत ताकतवर है, मन बड़ा चालाक है। किसी-न-किसी तरह से भ्रमित करके आपको ध्यान से हटा देगा। साहिब कह रहे हैं—

**कोई कोई पहुँचा ब्रह्म लोक में, धर माया ले आई॥**

मन यहाँ से भी वापिस कर सकता है। मन बहुत ही तेज़ चीज़ है।

**मन को मार गगन चढ़ धाय॥**

मन को मारकर चलना है। स्वांस को वापिस नहीं आने देना है। स्वांस उलटी चलने लगेगी तो शरीर शून्य होता जाएगा। इसमें एकाग्रता भंग नहीं होनी चाहिए। आपको लगेगा कि हाथ भारी हो गया है। उठाना चाहोगे तो नहीं उठेगा। आप देखना कि मुर्दा भारी हो जाता है। आपको लगेगा कि हाथ-पाँव भारी हैं, शरीर भारी हो गया है निर्जीव हो गया है। मन डराएगा, कहेगा कि उठ, नहीं तो हाथ-पाँव काटने पड़ेंगे। वो बहुत चालाक है। वो कहेगा कि हाथ तो उठा। नाड़ियाँ रुक गयी हैं, ब्लड का संचालन रुक गया है, तू कर क्या रहा है! टाँग तो हिला। जैसे आपने हिलाया तो वायु नीचे आ जाएगी और एकाग्रता समाप्त हो जाएगी। बस, मन की बात नहीं माननी है। बिलकुल मरने वाली बात होगी। धीरे-धीरे लगेगा कि गले तक का शरीर काम नहीं कर रहा है। क्योंकि स्वांस वहीं चल रही है। नीचे का शरीर लगेगा कि है ही नहीं। डटे रहना। धीरे-धीरे अब लगेगा कि माथा भी नहीं है। अब भय लगता है कि डूब गये। अँधकार में खो गये। ऐसा लगेगा कि हमेशा के लिए मर गये हो। मन फौरन शरीर की याद दिलाएगा। आत्मा छटपटाने लगती है कि शरीर कहाँ है। फिर बल लगाकर शरीर में वापिस आएगा और कहेगा कि हाय,

बच गये।

**सहज जनि जानो साईं की प्रीत॥**

**जीवत मरिए भवजल तरिए॥**

सुषुम्ना में बड़ा अँधेरा है। समझ में नहीं आता है कि क्या करें।

इसलिए—

**कितने तपसी तप कर डारे, काया डारी गारा।**

**गृह छोड़ भये सन्यासी, तऊ न पावत पारा॥**

मन हताश करता है, कहता है कि इतने दिन से लगे हैं, अँधेरा-ही-अँधेरा मिलता है। छोड़ यार! नहीं, लगे रहना है। अभी बाहर नहीं हुए हैं। यह है मौत से अमरत्व की तरफ चलना। अब लगेगा कि स्वांस शरीर से सवा हाथ ऊपर चल रही है। स्वांस से ही तो निकलना है। अब यहाँ मन भी थोड़ा काबू आ जाता है। क्योंकि वो स्वांस से ही क्रियाशील है।

**सुरति के दंड से घेर मन पवन को॥**

यह मन और पवन को घेरना हुआ।

**फेर उलटा चले॥**

यह है-उलटा चलना। धीरे-धीरे शून्य हो जाआगे। वो पलटेंगी तो लगेगा कि मर गया। यह है जीते जी मरना।

**जा मरने से जग डरे, मेरे मन आनन्द।**

**कब मरहुँ कब पाहुँ, पूरन परमानन्द॥**

एक ने कहा कि अगर ऐसा हुआ कि फिर शरीर में नहीं आए तो? मैंने कहा कि तू फिर जा ही नहीं पाएगा। इसलिए पक्का इरादा हो कि मरना-ही-मरना है। अगर आप यह सोचकर ध्यान में बैठे कि अभी उठकर रोटी बनानी है तो वहाँ भी रोटी बनाते रहोगे। अगर सोचोगे कि उठकर नहाना है तो फिर वहाँ नहाते ही रहोगे। निश्चित होकर बैठना।

...तो वो शून्य पलटनी है। जब शून्य पलटने लगती है तो जो

व्यक्तित्व है, जो आपको ध्यान है कि मेरा भाई है, मेरे माता-पिता हैं, मेरे बच्चे हैं, यह पूरी स्मृति खत्म होने लग जाती है। जगत का आभास समाप्त होने लगता है और ऐसा लगने लगता है कि अभी शरीर की अनुभूति खत्म हो गयी है, मेरा आपा भी जा रहा है। यह है-अहम से निकलना। यह अहंकार कोई घमंड ही नहीं है। मैं हूँ, यह अनुभूति भी अहंकार है। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, काम, क्रोध आदि इनकी अनुभूति भी अहंकार है। इस अवस्था में अभी अनुभूति है। यही है-अहंकार। अहंकार से निकलकर के ही निजरूप की तरफ जाना है। मैं मन हूँ, मैं बुद्धि हूँ, यहाँ तक यह आभास तो होता है। शरीर भी नहीं होता है। स्वांस भी नहीं रह जाती है अभी। लेकिन इस बिंदु पर यह आभास है। इसलिए यहाँ भी भ्रम है। यहाँ से भी मन स्लिप कर सकता है। बस, आप एकाग्र रहना। वो पलट जाएगी। जैसे आपका ध्यान हो या न हो, आपके कदम बढ़ते चलते हैं। आपने एक लक्ष्य लिया है कि मुझे बाजार तक जाना है। बाजार तक कुछ भी सोचते हुए जा रहे हैं, कदम अपने गंतव्य की तरफ जा रहे हैं। इस तरह स्वांसा मंजिल की तरफ चलने लगती है। धीरे-धीरे वो पलट जाती है। जब पलट जाता है तो यह तन छूट जाता है। अद्भुत, विशाल ब्रह्माण्ड अपने अन्दर देखने लगता है। अपने स्वरूप को भी देखने लगता है। साधक को पूरी बात समझ में आ जाती है कि कैसे शरीर बन जाता हूँ, आत्मा कैसे प्राणों में समा जाती है, कैसे मन में समाती है, मन को कैसे ग्रहण करती है, शरीर और इंद्रियों में आत्मा कैसे प्रविष्ट होती है, चिंतन कैसा होता है। यहाँ पर यह पूरा ज्ञान हो जाता है। यहाँ पर साधक यह समझ जाता है। यहाँ पर यह सुरति निकली। लेकिन मन के ही दायरे में है। क्योंकि—

### तीन लोक में मनहिं विराजी ॥

साहिब कह रहे हैं कि तीन लोक में मन ही विराजमान है। मन की ही हुकूमत है। ज्ञानी, पंडित आदि कोई नहीं जान पा रहा है। साहिब

ने ईसाइयत क्यों नहीं बोला ? क्योंकि उस समय हमारे देश में ईसाइयत स्थापित नहीं हुई थी। तो अब यह काम आसान हो जाता है। तैरना तो हाथ चलाना है। हाथ चलाना पानी को काटना है। यह एक कला है। डूबने वाला भी हाथ ही चलाता है। पर वो हाथ चलाकर डूब जाता है। इस तरह साधक ठीक से साधन को नहीं समझ पाता है तो उसे कुछ हासिल नहीं होता है। इसलिए गुरु के सान्निध्य के बिना साधन करना बहुत बड़ी त्रुटि है। पूर्ण सद्गुरु होना चाहिए।

**यह घट मंदिर प्रेम का, मत कोई बैठो धाय।**

**जो कोई बैठे धाय के, बिन सिर सेती जाय।।**

इस प्रेम के मंदिर में बिना सद्गुरु के नहीं जाना चाहिए। मन उलझा देगा।

एक बार पानी में तैरने की कला आ गयी तो बस, वो हाथ स्वाभाविक चलने लगते हैं। तब चाहोगे कि डूबूँ, तब भी नहीं डूब पाओगे। इस तरह अन्दर की दुनिया में नहीं भी जाना चाहोगे, तब भी जाना पड़ेगा। तब मन आपको भ्रमित नहीं कर पाएगा। आत्मा शरीर में वापिस आती है तो भी शरीर में रमती नहीं है। वो विदेह हो जाता है। उसको मार्ग मिल जाता है।

**बनत बनत बन जाई। प्रभु के द्वारे लगे रह भाई।।**

बच्चे लोग देखना कि लकीरें खींचते रहते हैं। वो लिखना चाहते हैं। उनसे लिखना नहीं बन रहा है। जो आप लिख रहे हैं, वो भी तो लकीरें ही हैं। पर उससे वो ठीक से नहीं बन रही हैं तो कहीं कॉपी पर, कहीं दीवार पर लिख रहा है। जब उसे लिखना आ जाता है तो फिर नहीं लिखता है लकीरें। अब शब्द लिखना शुरू कर देता है। इस तरह साधक जब तक नहीं जान पाता है, वो केवल लकीरें खींचता है। कभी अँधेरा मिलता है, कभी कुछ। हताशा मिलती है, तंग पड़ जाता है। पर जब आभास आ गया आंतरिक जगत का तो फुर्सत नहीं होती है। फिर वो अन्तरगमन करता है। अब जब भी बैठा, उसे पता चल गया कि कैसे



निकलना है।

### जहाँ जाना तहाँ निकट है ॥

जैसे तैरने वाला छलाँग लगाकर तैरना शुरू कर देता है। वो डूबता नहीं है। क्योंकि उसे तैरने की कला आ गयी है। इस तरह अब जब भी चाहता है, अन्तर में चला जाता है। उसे पता चल गया। कभी-कभी उसके बाद भी थोड़ी त्रुटि हो जाती है। आप किसी गाँव में जा रहे हैं। एक बार गये। दोबारा जाने में भी थोड़ी मुश्किल आती है। पता तो है कि कहाँ है। पर कभी-कभी रास्ता भटक जाते हैं आप। लेकिन जब लगातार आते-जाते हैं तो आपको तो यह भी पता चलता है कि इस गाँव से फलाने गाँव का मोड़ कहाँ आता है, रास्ते में खड़्डा कहाँ-कहाँ पर है, कौन-सी चीज़ कहाँ पर है और रास्ते की दूरी कितनी है, सड़क कैसी बनी हुई है, कौन-कौन सी बीच में पुलियाँ आती हैं, कौन सी नदियाँ आती हैं। आपको सब बोध हो जाता है। सब आपके चित्त में समा जाता है। अब जब आप उस गाँव में जाते हैं तो पूरे भरोसे से जाते हैं। यदि कोई पूछे तो आप उसे भी गाइड करते हैं। इस तरह साधक को आभास मिलने लगता है।



चिंता तो सत्य नाम की, और न चितवे दास।  
जो कुछ चितवने नाम बिन, सोई काल की फाँस।

# बिनती के शब्द

तन थिर, मन थिर, वचन थिर, सुरत निरत थिर होय।

आरती सद्गुरु गाऊँ कैसे, लय धुन गान न मैं जानूँ।

मैं मूरख अज्ञानी दास तुम्हारा शब्द बिनती न जानूँ॥

आरती सद्गुरु...

निपट नीच ये मन मेरा, सुमिरन ध्यान में न लागे।

मैं सद्गुरु छवि पाऊँ कैसे, मन थिर करना मैं न जानूँ॥

आरती सद्गुरु...

विकार भरा ये शरीर मेरा, आसन ध्यान में न लागे।

मुद्रा में ध्यान करूँ कैसे, तन थिर करना मैं न जानूँ॥

आरती सद्गुरु...

अधर ध्यान में बास तुम्हारा, स्वाँस अधर मैं धर न सकूँ।

स्वाँसों में तुम्हें राखूँ कैसे, मैं सुरत निरत थिर न जानूँ॥

आरती सद्गुरु...

हे सद्गुरु! सुरत करो मेरी, मैं भक्ति करना न जानूँ।

तुम बिन नाम जपूँ कैसे, सत्यनाम का सुमिरन न जानूँ॥

आरती सद्गुरु...



## सद्गुरु मेरे दया कर दो

मन माया की यह देह अपावन, चरणामृत से पावन कर दो।

पल छिन मेरे अवगुण से भरे, सुरति देकर सद्गुण भर दो॥

सत्यनाम सुमरने साँसों में, सुरति में रूप मेरी भर दो।

मन बुद्धि चित्त में आप रहो, सद्गुरु दया ऐसी कर दो॥

काल-कराल यम दूर रहें, मुझ में ऐसी शक्ति भर दो।

चरण धूर सिर लेने को, सद्गुरु मेरे दया कर दो॥

चरणों में तुम्हारे ध्यान रहे, सद्गुरु कृपा ऐसी कर दो।

काल जाल का भय न रहे, नाम सुरत मुझ में भर दो॥

सिमरन में मेरे सदा रहो, हे दयानिधि दया कर दो।

तीन लोक भवसागर से, करुणामयी पार मुझे कर दो॥

सेवा-सत्संग सत्य-शब्द मिलें, दासों का दास मुझे कर दो।

लोभ मोह मद तम हर लो, सद्ज्ञान प्रकाश मुझ में भर दो॥

कर्तव्य कर्म निज जीवन के, निर्लिप्त करूँ शक्ति भर दो।

मान बड़ाई लालच न रहे, सहज सरल बालक कर दो॥

अब जीवन के आधार तुम्हीं, जीवन में भक्ति रस भर दो।

चरणों में सद्गुरु सदा रहूँ, ऐसी कृपा दृष्टि कर दो॥



## काल जाल से मुक्ति

चौरासी लख जिव योनि में, मानव तन दुर्लभ पाया है।

चार लक्ष मानष योनि में, सुख दुख से भरी यह काया है॥

सद्कर्म भक्ति के योगों से, उच्च देह कर्म में आया है।

फिर काल निरञ्जन माया के, भ्रम जालों ने भरमाया है॥

सृष्टि का कारण कालपुरुष, जीवों में मन कहलाता है।

त्रिदेवों के अवतारों से, चिरकर्म कारण बन जाता है॥

शुभ कर्मों से तो स्वर्ग मिलें, निष्काम शून्य में जाता है।

जीवों को मोक्ष निजधाम मिले, सद्गुरु मोक्ष का दाता है॥

भय-भ्रम संशय दूर करे, ऐसी सद्गुरु की वाणी है।

काम क्रोध मोह लोभ हरे, शब्द सद्गुरु बखानी है॥

कालपुरुष की माया सब हारे, सद्गुरु सत्यनाम का दाता है।

तीन लोक भवसागर से तारे, जब जीव शरण में आता है॥

## सद्गुरु महिमा

सत्ययुग सत् सुकृत अवतारे, त्रेता मुनीन्द्र कहलाय।

द्वापर करुणामयी संतन तारे, कलियुग में कबीर कहलाय॥

मान बढ़ाई कभी न चाही, पुनि पुनि कलियुग में आए।

गुप्त नाम से हँस बनाने, मधु परमहँस बन आए॥

काल निरञ्जन की माया ने, चार खानि में जीव उपजाय।

तीन लोक के राज काज हित, ब्रह्मा विष्णु महेश निर्माय॥

त्रिलोकों में मन ही विराजे, आद्यशक्ति माया कहलाय।

बिन सद्गुरु कोई रहस्य न पावे, आत्म मोक्ष कबहुँ न पाय॥

शास्त्र कथा अरु तीर्थ व्रत की, भक्ति जीवों को भरमाय ।

हँसों को सत्यलोक ले जाने, सद्गुरु साहिब जग में आये ॥

अवतारों की लीला भक्ति से, आवागमन न कभी नसाय ।

सब अवतार कर्मफल भोगें, जीव, देह-अंतरण में जाय ॥

राम-रावण कृष्ण-कंस की, जीवन लीला जग में उरझाय ।

नश्वर पंच तत्व भक्ति में, षट् दर्शन गुरु रहे भरमाय ॥

सद्गुरु आत्म मोक्ष के दाता, गुप्त नाम परमपुरुष कहाय ।

सार शब्द सद्गुरु बखाने, आत्म तत्व निज में दर्शाय ॥



## पुस्तक सूची

1. परा रहस्या
2. मासिक पत्रिका सत्यकेतु
3. पावन प्रार्थनाएँ
4. सद्गुरु चालीसा
5. वार्षिक डायरी
6. सद्गुरु भक्ति
7. कहाँ से तू आया और कहाँ तुझे जाना रे?
8. सत्संग सुधारस
9. नाम अमृत सागर
10. अमृत वाणी
11. सद्गुरु नाम जहाज़ है
12. चल हंसा सतलोक
13. कोटि नाम संसार में तिनते मुक्ति न होय
14. मूल नाम गुप्त है, जाने बिरला कोय
15. गुरु सुमिरै सो पार
16. तीन लोक से न्यारा
17. सेहत के लिए ज़रूरी
18. सहजे सहज पाइये
19. रोगों से छुटकारा
20. सद्गुरु महिमा
21. भक्ति के चोर
22. अनुरागसागर वाणी
23. भक्ति सागर
24. हरि सेवा युग चार है, गुरु सेवा पल एक
25. सत्य नाम के सुमरते उबरे पतित अनेक
26. काग पलट हंसा कर दीना
27. कस्तूरी कुण्डल बसै मृग खोजे बन माहिं
28. गुरु पारस गुरु परस है
29. गुरु अमृत की खान
30. शीश दिये जो गुरु मिले तो भी सस्ता जान
31. मूल सुरति
32. भृंग मता होय जिहि पासा, सोई गुरु सत्य धर्मदासा
33. मैं कहता हूँ आँखिन देखी
34. गुरु संजीवन नाम बतावे
35. नाम बिना नर भटक मरे
36. रोगों की पहचान
37. यह संसार काल को देशा
38. न्यारी भक्ति
39. साहिब तेरी साहिबी सब घट रही समाय
41. आयुर्वेद का कमाल रोगों के निदान में
42. सुरति समानी नाम में
43. सबकी गठरी लाल है, कोई नहीं कंगाल

44. निन्दक जीवे युगन युग  
काम हमारा होय।
45. निराले सद्गुरु
46. कुँजड़ों की हाट में हीरे का  
क्या मोल
47. जीवड़ा तू तो अमर लोक का  
पड़ा काल बस आई हो
48. मुझे है काम 'सद्गुरु से  
जगत रूठे तो रूठन दे'
49. जेहि खोजत कल्पो भये  
घटहि माहिं सो मूर
50. आत्म ज्ञान बिना नर भटके
51. बिन सतगुरु बाँचे नहीं  
कोटिन करे उपाय
52. अँधी सुरति नाम बिन जानो
53. सत्यनाम निज औषधि  
सद्गुरु देई बताय
54. सेहत संजीवनी
55. भक्ति दान गुरु दीजिए
56. मन पर जो सवार है ऐसा  
ऐसा विरला कोई
57. सत्यनाम है सार बूझौ सन्त  
विवेक करि
58. रोग निवारक
59. मुक्ति भेद मैं कहौं विचारी
60. "तेरा बैरी कोई नहीं  
तेरा बैरी मन"
61. सुरति का खेल सारा है
62. सार शब्द निहअक्षर सारा
63. करूँ जगत से न्यार
64. बिन सत्संग विवेक न होई
65. सत्य नाम को जनि कर दूजा  
देई बहा
66. सुरत कमल सद्गुरु स्थाना
67. अब भया रे गुरु का बच्चा
68. मनहिं निरंजन सबै नचाए
69. सत्यपुरुष को जानसी  
तिसका सतगुरु नाम
70. आपा पौ आपहि बँध्यो
71. सत्य भक्ति का भेद न्यार
72. जपो रे हंसा केवल नाम  
कबीर
73. सत्य भक्ति कोई बिरला जाना
74. जगत है रैन का सपना
75. 70 प्रलय मारग माहीं
76. सार नाम सत्यपुरुष कहाया
77. आवे न जावे मरे न जन्मे  
सोई सत्यपुरुष हमारा है
78. निराकार मन
79. सत्य सार
80. सुरति
81. भक्ति रहस्य
82. आत्म बोध
83. अमर लोक
84. सच्चा शिष्य
85. सद्गुरू तत्व
86. कोई कोई जीव हमारा है
87. विहंगम मुद्रा
88. शक्ति बिना नहीं पंथ चलई
89. पुरुष शक्ति जब आए समाई  
तब नहीं रोके काल कसाई
90. सद्गुरु मोहि दीनी अजब  
जड़ी
91. मेरा करता मेरा साईया
92. कबीर कलयुग आ गया,  
सन्त न पूजै कोय।।
93. पूर्णिमा महात्म
94. चार पदार्थ इक मग माहीं
95. अध्यात्मिक प्रश्नोत्तर
96. चिंता तो सतनाम की और न  
चितवे दास
97. काल खड़ा सर ऊपरे
98. कहत कबीर सुनो भाई साधो
99. सेवा सिमरन सार है
100. गुरु आज्ञा निरखत रहे, जैसे  
मणिह भुजंग
101. अकह नाम
102. ठिकाने अलग अलग हैं
103. आध्यात्मिक शक्ति

## ਤੁਰਕੀ

01. ਸਦਗੁਰੂ ਭਕਤਿ

02. ਅਨੁਰਾਗਸਾਗਰ ਵਾਧੀ

## ਮਰਾਠੀ ਭਾਸ਼ਾ

01. ਯਹ ਸੰਸਾਰ ਕਾਲ ਕੋ ਦੇਸ਼ਾ

02. ਅਨੁਰਾਗਸਾਗਰ ਵਾਧੀ

03. ਨਾਮਾ ਸ਼ਿਵਾਯ ਮਾਨਵ ਜੀਵਨ  
ਵਧਰਥ

04. ਕਰੁ ਜਗਤ ਸੇ ਨ੍ਯਾਰ

## ਤਮਿਲ ਭਾਸ਼ਾ

01. ਯਹ ਸੰਸਾਰ ਕਾਲ ਕੋ ਦੇਸ਼ਾ

02. ਅਨੁਰਾਗਸਾਗਰ ਵਾਧੀ

## ਕਨਨਡ ਭਾਸ਼ਾ

01. ਮਨ ਪਰ ਓ ਅਸਵਾਰ ਹੈ ਏਸਾ  
ਵਿਰਲਾ ਕੋਝੈ

02. ਕਰੁ ਜਗਤ ਸੇ ਨ੍ਯਾਰ

03. ਅਨੁਰਾਗਸਾਗਰ ਵਾਧੀ

## ਪੰਜਾਬੀ ਭਾਸ਼ਾ

01. ਸਤਿਗੁਰੂ ਭਗਤੀ

02. ਨਾਮ ਅਮ੍ਰਿਤ ਸਾਗਰ

03. ਕਰੁ ਜਗਤ ਸੇ ਨਿਆਰ

04. ਅਨੁਰਾਗ ਸਾਗਰ ਬਾਣੀ

## ਗੁਜਰਾਤੀ ਭਾਸ਼ਾ

01. ਅਨੁਰਾਗਸਾਗਰ ਵਾਧੀ

02. ਨਾਮ ਬਿਨਾ ਨਰ ਭਟਕ ਮੈਰੈ

03. ਕਰੁ ਜਗਤ ਸੇ ਨ੍ਯਾਰ

## ਡੋਗਰੀ ਭਾਸ਼ਾ

01. ਨ੍ਯਾਰੀ ਭਕਤਿ

02. ਸਹਜੇ ਸਹਜ ਪਾਝਏ

## ਅੰਗ੍ਰੇਜੀ ਭਾਸ਼ਾ

01. Meditation on a Real  
SATGURU Ensures  
Permanent Salvation

02. Satguru Bhakti  
(Uniqueness)

03. The Truth

04. Without Soul  
Realisation Man Has  
to Wander

05. The Whole Game is  
That Of  
Concentration

06. Atma-An Exposition  
(Atam Bhodh)

07. 70 Dissolution

08. Anuragsagar vani

09. Naam World of This  
World

10. Secret of Salvation

11. Crossing the Ocean  
of Life

12. Stealer of Devotion